रयणसार

आचार्य श्री कुन्दकुन्द

रयणसार

आचार्य श्री कुन्दकुन्द

ॐ नमः सिद्धेभ्यः

श्रीमद्-भगवत्-कुंदकुंदाचार्य-देव-प्रणीत

रयणसार

णमिऊण वड्ढमाणं परमप्पाणं जिणं ति-सुद्धेण ।
वोच्छामि रयणसारं सायारणयार-धम्मीणं ॥1॥

अन्वयार्थ- **[परमप्पाणं]** परमात्मा **[वड्ढमाणं]** वर्धमान **[जिणं]** जिन {जिनेन्द्र} को **[ति-सुद्धेण]** तीनों शुद्धिपूर्वक **[णमिऊण]** नमस्कार करके **[सायारणयार]** सागार-अनगार **[धम्मीणं]** धर्मयुक्त **[रयणसारं]** रयणसार/रत्नसार {ग्रन्थ} को **[वोच्छामि]** कहूँगा।

परमात्मा वर्धमान जिन {जिनेन्द्र} को तीनों शुद्धिपूर्वक नमस्कार करके सागार-अनगार धर्मयुक्त रयणसार/रत्नसार {ग्रन्थ} को कहूँगा।

पुव्वं जिणेहिं भणियं जहट्ठियं गणहरेहिं वित्थरियं ।
पुव्वाइरियक्कमजं तं बोल्लइ जो हु सद्दिट्ठी ॥2॥

अन्वयार्थ- **[जो]** जो **[पुव्वं]** पूर्वकाल में **[जिणेहिं]** जिनदेव के द्वारा **[भणियं]** कहे गये **[गणहरेहिं]** गणधरों के द्वारा **[वित्थरियं]** विस्तृत किये गये **[पुव्वाइरियक्कमजं]** पूर्वाचार्यों के क्रम से प्राप्त **[जहट्ठियं]** ज्यों का त्यों/वास्तविक सत्य **[तं]** उसको ही **[बोल्लइ]** बोलता है/कहता है **[हु]** निश्चय से/वस्तुतः {वह} **[सद्दिट्ठी]** सम्यग्दृष्टि है।

जो पूर्वकाल में जिनदेव के द्वारा कहे गये, गणधरों के द्वारा विस्तृत किये गये, पूर्वाचार्यों के क्रम से प्राप्त ज्यों का त्यों/वास्तविक सत्य उसको ही बोलता है/कहता है निश्चय से/वस्तुतः वह सम्यग्दृष्टि है।

मदि-सुद-णाण-बलेण दु सच्छंदं बोल्लइ जिणुद्दिट्ठं ।
जो सो होइ कुदिट्ठी ण होइ जिण-मग्ग-लग्ग-रवो ॥3॥

अन्वयार्थ- [जो] जो जीव **[जिणुद्दिट्ठं]** जिनेन्द्र देव कथित तत्त्व को **[मदि-सुद-णाण-बलेण दु]** मति और श्रुतज्ञान के बल से **[सच्छंदं]** स्वेच्छानुसार/स्वच्छन्द **[बोल्लइ]** बोलता है **[सो]** वह **[कुदिट्ठि]** मिथ्यादृष्टि **[होइ]** होता है वह **[जिण-मग्ग-लग्ग-रवो]** जिन मार्ग में संलग्न जीव का वचन **[ण]** नहीं **[होइ]** होता है।

जो जीव जिनेन्द्र देव कथित तत्त्व को मति और श्रुतज्ञान के बल से स्वेच्छानुसार/स्वच्छन्द बोलता है वह मिथ्यादृष्टि होता है वह जिन मार्ग में संलग्न जीव का वचन नहीं होता है।

सम्मत्त-रयण-सारं मोक्ख-महारुक्ख-मूलमिदि भणियं ।
तं जाणिज्जइ णिच्छय-ववहार-सरूवदो भेयं ॥4॥

अन्वयार्थ- [मोक्ख-महारुक्ख-मूलं] मोक्षरूपी महावृक्ष का मूल **[सम्मत्त-रयण-सारं]** सम्यक्त्व रत्न ही सारभूत है **[इदि]** ऐसा **[भणियं]** कहा गया है **[तं]** वह **[णिच्छय-ववहार-सरूवदो]** निश्चय और व्यवहार रूप से {दो} **[भेयं]** भेद वाला **[जाणिज्जइ]** जानना चाहिये।

मोक्षरूपी महावृक्ष का मूल सम्यक्त्व रत्न ही सारभूत है ऐसा कहा गया है, वह निश्चय और व्यवहार रूप से दो भेद वाला जानना चाहिये।

भय-विसण-मल-विवज्जिय संसार-सरीर-भोग-णिव्विण्णो।
अट्ठ-गुणंग-समग्गो दंसण-सुद्धो हु पंच-गुरु-भत्तो ॥5॥

अन्वयार्थ- [दंसण-सुद्धो] निर्दोष सम्यग्दर्शन का धारक/सम्यग्दृष्टि **[हु]** वस्तुतः **[भय-विसण-मल-विवज्जिय]** भय-व्यसन और मलों से रहित होता है **[संसार-सरीर-भोग-णिव्विण्णो]** संसार, शरीर और भोगों से विरक्त होता है **[अट्ठ-गुणंग-समग्गो]** अष्टांग गुणों से युक्त/पूर्ण **[पंच-गुरु-भत्तो]** पंचगुरु/पंच-परमेष्ठी का भक्त होता है।

निर्दोष सम्यग्दर्शन का धारक/ सम्यग्दृष्टि वस्तुतः भय-व्यसन और मलों से रहित होता है; संसार, शरीर और भोगों से विरक्त होता है; अष्टांग गुणों से युक्त/पूर्ण; पंचगुरु/पंच परमेष्ठी का भक्त होता है।

णिय-सुद्धप्पणुरत्तो बहिरप्पावत्थ-वज्जिओ णाणी ।
जिण-मुणि-धम्मं मण्णइ गय-दुक्खो होइ सद्दिट्ठी ॥6॥

अन्वयार्थ- {जो} **[णाणी]** आत्मज्ञानी **[णिय-सुद्धप्पणुरत्तो]** अपनी शुद्ध आत्मा में अनुरक्त रहता है **[बहिरप्पावत्थ-वज्जिओ]** बहिरात्मा की अवस्था से रहित है/पराङ्मुख है **[जिण-मुणि-धम्मं]** जिनेन्द्र देव, दिगम्बर/परिग्रह रहित मुनि और धर्म को **[मण्णइ]** मानता है ऐसा **[सद्दिट्ठी]** सम्यग्दृष्टि **[गय-दुक्खो]** दुखों से रहित **[होइ]** होता है।

जो आत्मज्ञानी अपनी शुद्ध आत्मा में अनुरक्त रहता है, बहिरात्मा की अवस्था से रहित है/पराङ्मुख है; जिनेन्द्र देव, दिगम्बर/परिग्रह रहित मुनि और धर्म को मानता है ऐसा सम्यग्दृष्टि दुखों से रहित होता है।

मय-मूढमणायदणं संकाइ-वसण-भयमईयारं ।
जेसिं चउदालेदे ण संति ते होंति सद्दिट्ठी ॥7॥

अन्वयार्थ- [जेसिं] जिनके **[मय-मूढमणायदणं]** मद, मूढ़ता और अनायतन **[संकाइ-वसण-भयं]** शंकादि दोष, व्यसन भय **[अईयारं]** अतिचार **[चउदालेदे]** ये चौवालीस {४४} दोष **[ण]** नहीं **[संति]** होते हैं **[ते]** वे **[सद्दिट्ठी]** सम्यग्दृष्टि **[होंति]** होते हैं।

जिनके मद, मूढ़ता और अनायतन शंकादि दोष, व्यसन, भय, अतिचार ये चौवालीस {४४} दोष नहीं होते हैं वे सम्यग्दृष्टि होते हैं।

उहय-गुण-वसण-भय-मल-वेरग्गाइचार-भत्ति-विग्घं वा ।
एदे सत्तत्तरिया दंसण-सावय-गुणा भणिया ॥8॥

अन्वयार्थ- [उहय-गुण] दोनों गुण **[वसण-भय-मल-वेरग्गाइचार]** सातव्यसन, भय, मल दोष से रहित, वैराग्ययुक्त, अतिचार रहित **[वा]** और **[भत्ति-विग्घं]** निर्विघ्न भक्ति **[एदे]** ये **[सत्तत्तरिया]** ७७/सतत्तर **[दंसण-सावय-गुणा]** सम्यग्दृष्टि श्रावक के गुण **[भणिया]** कहे गये हैं।

दोनों गुण, सातव्यसन, भय, मल दोष से रहित, वैराग्ययुक्त, अतिचार रहित और निर्विघ्न भक्ति ये ७७/सतत्तर सम्यग्दृष्टि श्रावक के गुण कहे गये हैं।

देव-गुरु-समय-भत्ता संसार-सरीर-भोग-परिचत्ता ।
रयणत्तय-संजुत्ता ते मणुया सिवसुहं पत्ता ॥9॥

अन्वयार्थ- {जो} **[देव-गुरु-समय-भत्ता]** देव-गुरु-शास्त्र के भक्त होते हैं **[संसार-सरीर-भोग]** संसार, शरीर व भोगों के **[परिचत्ता]** परित्यागी होते हैं **[रयणत्तय-संजुत्ता]** रत्नत्रय से संयुक्त होते हैं **[ते]** वे **[मणुया]** मनुष्य **[सिवसुहं]** शिवसुख को **[पत्ता]** प्राप्त करते हैं।

जो देव-गुरु-शास्त्र के भक्त होते हैं; संसार, शरीर व भोगों के परित्यागी होते हैं रत्नत्रय से संयुक्त होते हैं वे मनुष्य शिवसुख को प्राप्त करते हैं।

दाणं पूया सीलं उववासं बहुविहं पि खवणं पि ।
सम्म-जुदं मोक्ख-सुहं सम्म-विणा दीह-संसारं ॥10॥

अन्वयार्थ- **[सम्म-जुदं]** सम्यग्दर्शन से युक्त **[दाणं पूया सीलं]** दान, पूजा, शील **[बहुविहं पि]** अनेक प्रकार के **[उववासं]** उपवास **[खवणं पि]** कर्मक्षय में कारणभूत व्रत भी **[मोक्ख-सुहं]** मोक्षसुख के कारण हैं {और} **[सम्म-विणा]** सम्यग्दर्शन के बिना {ये ही} **[दीह-संसारं]** दीर्घ संसार के कारणभूत हैं।

सम्यग्दर्शन से युक्त दान, पूजा, शील, अनेक प्रकार के उपवास कर्मक्षय में कारणभूत व्रत भी मोक्षसुख के कारण हैं और सम्यग्दर्शन के बिना {ये ही} दीर्घ संसार के कारणभूत हैं।

दाणं पूया मुक्खं सावय-धम्मे ण सावया तेण विणा ।
झाणज्झयणं मुक्खं जइ-धम्मे तं विणा तहा सो वि ॥11॥

अन्वयार्थ- [सावय-धम्मे] श्रावक धर्म में **[दाणं पूया]** दान और पूजा **[मुक्खं]** मुख्य है **[तेण]** उसके **[विणा]** बिना **[सावया]** श्रावक **[ण]** नहीं होता है। **[झाणज्झयणं]** ध्यान और अध्ययन **[जइ-धम्मे]** यति धर्म में **[मुक्खं]** मुख्य हैं **[तं विणा]** उस ध्यान और अध्ययन के बिना **[सो वि]** वह मुनि धर्म भी **[तहा]** वैसा ही व्यर्थ है।

श्रावक धर्म में दान और पूजा मुख्य है उसके बिना श्रावक नहीं होता है। ध्यान और अध्ययन यति धर्म में मुख्य हैं उस ध्यान और अध्ययन के बिना वह मुनि धर्म भी वैसा ही व्यर्थ है।

दाणु ण धम्मु ण चागु ण भोगु ण बहिरप्प जो पयंगो सो ।
लोह-कसायग्गि-मुहे पडियो मरियो ण संदेहो ॥12॥

अन्वयार्थ- [जो] जो श्रावक **[दाणु]** दान **[ण]** नहीं देता **[धम्मु ण]** धर्म-पालन नहीं करता, **[चागु ण]** त्याग नहीं करता, **[भोगु ण]** न्यायपूर्वक भोग नहीं करता **[सो]** वह **[बहिरप्प]** बहिरात्मा **[पयंगो]** पतंगा है **[लोह-कसायग्गि-मुहे]** लोभकषाय रूपी अग्नि के मुख में **[पडियो]** पड़ा हुआ **[मरियो]** मर जाता है **[संदेहो]** इसमें संदेह **[ण]** नहीं है।

जो श्रावक दान नहीं देता, धर्म-पालन नहीं करता, त्याग नहीं करता, न्यायपूर्वक भोग नहीं करता वह बहिरात्मा पतंगा है

लोभकषाय रूपी अग्नि के मुख में पड़ा हुआ मर जाता है इसमें संदेह नहीं है।

जिणपूया मुणिदाणं करेइ जो देइ सत्ति-रूवेण ।
सम्माइट्ठी सावय-धम्मी सो मोक्खमग्ग-रओ ॥13॥

अन्वयार्थ- **[जो]** जो **[सत्ति-रूवेण]** शक्ति के अनुसार **[जिणपूया करेइ]** जिनदेव की पूजा करता है **[मुणिदाणं देइ]** मुनियों को दान देता है **[सो]** वह **[सम्माइट्ठी]** सम्यग्दृष्टि **[धम्मी]** धर्मात्मा **[सावय]** श्रावक **[मोक्ख-मग्ग-रओ]** मोक्षमार्ग में रत है।

जो शक्ति के अनुसार जिनदेव की पूजा करता है, मुनियों को दान देता है वह सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा श्रावक मोक्षमार्ग में रत है।

पूय-फलेण तिलोए सुर-पुज्जो हवेइ सुद्ध-मणो ।
दाण-फलेण तिलोए सार-सुहं भुंजदे णियदं ॥14॥

अन्वयार्थ- **[सुद्ध-मणो]** शुद्ध मन वाला श्रावक **[णियदं]** निश्चय से **[पूय-फलेण]** पूजा के फल से **[तिलोए]** तीनों लोकों में **[सुर-पुज्जो]** देवों से पूज्य **[हवेइ]** होता है **[दाण-फलेण]** दान के फल से **[तिलोए]** तीन लोक में **[सार-सुहं]** सारभूत सुखों को **[भुंजदे]** भोगता है।

शुद्ध मन वाला श्रावक निश्चय से पूजा के फल से तीनों लोकों में देवों से पूज्य होता है, दान के फल से तीन लोक में सारभूत सुखों को भोगता है।

दाणं भोयण-मेत्तं दिण्णइ धण्णो हवेइ सायारो ।
पत्तापत्त-विसेसं संदंसणे किं वियारेण ॥15॥

अन्वयार्थ- [सायारो] श्रावक **[भोयण-मेत्तं]** भोजनमात्र **[दाणं]** दान **[दिण्णइ]** देता है तो वह **[धण्णो]** धन्य **[हवेइ]** हो जाता है **[संदंसणे]** जिनलिंग को देखकर **[पत्तापत्त-विसेसं]** पात्र-अपात्र विशेष के **[वियारेण]** विचार/विकल्प से **[किं]** क्या लाभ है?

श्रावक भोजनमात्र दान देता है तो वह धन्य हो जाता है, जिनलिंग को देखकर पात्र-अपात्र विशेष के विचार/विकल्प से क्या लाभ है?

दिण्णइ सुपत्त-दाणं विसेसदो होइ भोग-सग्ग-मही ।
णिव्वाण-सुहं कमसो णिद्दिट्ठं जिणवरिंदेहिं ॥16॥

अन्वयार्थ- [जिणवरिंदेहिं] जिनेन्द्र देव ने **[णिद्दिट्ठं]** कहा है कि **[सुपत्त-दाणं दिण्णइ]** सुपात्र में दान को दिया जाता है तो **[विसेसदो]** विशेष रूप से **[भोग-सग्ग-मही]** भोगभूमि व स्वर्ग **[होइ]** प्राप्त होता है और **[कमसो]** क्रमशः **[णिव्वाण-सुहं]** निर्वाण सुख प्राप्त होता है।

जिनेन्द्र देव ने कहा है कि सुपात्र में दान को दिया जाता है तो विशेष रूप से भोगभूमि व स्वर्ग प्राप्त होता है और क्रमशः निर्वाण सुख प्राप्त होता है।

खेत्त-विसेसे काले ववीय-सुबीयं फलं जहा विउलं ।
होइ तहा तं जाणहि पत्त-विसेसेसु दाण-फलं ॥17॥

अन्वयार्थ- [जहा] जिस प्रकार **[खेत्त-विसेसे]** विशेष-उत्तम क्षेत्र में **[काले-विसेसे]** विशेष-योग्य काल में **[ववियं]** बोया गया **[सुबीयं]** उत्तम बीज **[विउलं]** विपुल **[फलं]** फलवाला **[होइ]** होता है **[तहा]** उसी प्रकार **[पत्त-विसेसेसु]** विशेष-उत्तम पात्रों में दिये **[तं]** उस **[दाण-फलं]** दान के फल को **[जाणहि]** जानो।

जिस प्रकार विशेष-उत्तम क्षेत्र में विशेष-योग्य काल में बोया गया उत्तम बीज विपुल फलवाला होता है उसी प्रकार विशेष-उत्तम पात्रों में दिये उस दान के फल को जानो।

इह णिय-सुवित्त-बीयं जो ववइ जिणुत्त-सत्त-खेत्तेसु ।
सो तिहुवण-रज्ज-फलं भुंजदि कल्लाण-पंच-फलं ॥18॥

अन्वयार्थ- [जो] जो पुरुष **[जिणुत्त]** जिनेन्द्र देव द्वारा कहे गये **[सत्त-खेत्तेसु]** सप्त क्षेत्रों में **[णिय-सुवित्त-बीयं]** अपने नीति पूर्वक/न्यायोपार्जित श्रेष्ठ धनरूपी बीज को **[ववइ]** बोता है **[सो]** वह **[इह]** इस लोक में **[तिहुवण-रज्ज-फलं]** तीनों भुवनों राज्यरूपी फल को और **[कल्लाण-पंच-फलं]** पंच कल्याणक रूप फल को **[भुंजदि]** भोगता है।

जो पुरुष जिनेन्द्र देव द्वारा कहे गये सप्त क्षेत्रों में अपने नीति पूर्वक/न्यायोपार्जित श्रेष्ठ धनरूपी बीज को बोता है वह इस लोक में तीनों भुवनों राज्यरूपी फल को और पंच कल्याणक रूप फल को भोगता है।

मादु-पिदु-पुत्त-मित्तं कलत्त-धण-धण्ण-वत्थु-वाहणं विहवं।
संसार-सार-सोक्खं सव्वं जाणउ सुपत्त-दाण-फलं ॥19॥

अन्वयार्थ- [मादु-पिदु-पुत्त-मित्तं] माता-पिता-पुत्र-मित्र **[कलत्त]** स्त्री **[धण]** गाय-भैंस आदि पशु **[धण्ण]** धान्य/अनाज **[वत्थु]** मकान **[वाहणं]** वाहन **[विहवं]** संपत्ति, आभूषण आदि वैभव **[संसार-सार-सोक्खं]** संसार के उत्तमोत्तम सुख ये **[सव्वं]** सब **[सुपत्त-दाण-फलं]** सुपात्र में दिये दान का फल **[जाणउ]** जानो।

माता, पिता, पुत्र, मित्र, स्त्री, गाय-भैंस आदि पशु, धान्य/अनाज, मकान, वाहन, संपत्ति, आभूषण आदि वैभव संसार के उत्तमोत्तम सुख ये सब सुपात्र में दिये दान का फल जानो।

सत्तंग-रज्ज-णव-णिहि-भंडार-छडंग-बल-चउद्दह-रयणं ।
छण्णवदि सहस्सेत्थि-विहवं जाणउ सुपत्त-दाण-फलं ॥20॥

अन्वयार्थ- [सत्तंग-रज्ज] सप्तांग राज्य **[णव-णिहि]** नवनिधि **[भंडार]** कोष **[छडंग-बल]** छह प्रकार की सेना **[चउद्दह-रयणं]** चौदह रत्न **[छण्णवदि सहस्सेत्थि]** छियानवें हजार स्त्रियाँ {और} **[विहवं]** वैभव यह सब **[सुपत्त-दाणफलं]** सुपात्रदान का फल **[जाणउ]** जानो।

सप्तांग राज्य, नवनिधि, कोष, छह प्रकार की सेना, चौदह रत्न, छियानवें हजार स्त्रियाँ और वैभव यह सब सुपात्रदान का फल जानो।

सुकुल-सुरूव-सुलक्खण-सुमइ-सुसिक्खा-सुसील-सुगुण-सुचरित्तं।
सयलं सुहाणुभवणं विहवं जाणउ सुपत्त-दाण-फलं ॥21॥

अन्वयार्थ- [सुकुल] उत्तम कुल **[सुरूव]** उत्तम रूप **[सुलक्खण]** उत्तम लक्षण **[सुमइ]** उत्तम बुद्धि **[सुसिक्खा]** उत्तम शिक्षा **[सुसील]** उत्तम स्वभाव **[सुगुण]** उत्तम गुण **[सुचरित्तं]** उत्तम चारित्र **[सयलं]** सम्पूर्ण/सकल **[सुहाणुभवणं]** सुखों का अनुभव और **[विहवं]** वैभव- यह सब **[सुपत्त-दाण-फलं]** सुपात्रदान का फल **[जाणउ]** जानो।

उत्तम कुल, उत्तम रूप, उत्तम लक्षण, उत्तम बुद्धि, उत्तम शिक्षा, उत्तम स्वभाव, उत्तम गुण, उत्तम चारित्र, सम्पूर्ण/सकल सुखों का अनुभव और वैभव- यह सब सुपात्रदान का फल जानो।

जो मुणि-भुत्तविसेसं भुंजइ सो भुंजए जिणुद्दिट्ठं ।
संसार-सार-सोक्खं कमसो णिव्वाण-वर-सोक्खं ॥22॥

अन्वयार्थ- [जो] जो भव्यात्मा **[मुणि-भुत्तविसेसं]** मुनि के आहार के पश्चात् अवशिष्ट अन्न को {पवित्र मानकर} **[भुंजइ]** खाता है **[सो]** वह **[संसार-सार-सोक्खं]** संसार के सारभूत सुखों को और **[कमसो]** क्रमशः **[णिव्वाण-वर-सोक्खं]** मोक्ष के उत्तम सुख को **[भुंजए]** भोगता है ऐसा **[जिणुद्दिट्ठं]** जिनेन्द्र देव ने कहा है।

जो भव्यात्मा मुनि के आहार के पश्चात् अवशिष्ट अन्न को {पवित्र मानकर} खाता है वह संसार के सारभूत सुखों को और क्रमशः मोक्ष के उत्तम सुख को भोगता है ऐसा जिनेन्द्र देव ने कहा है।

सीदुण्ह-वाउ-पिउलं सिलेसिमं तह परिसमं वाहिं ।
कायकिलेसुववासं जाणिज्जे दिण्णए दाणं ॥23॥

अन्वयार्थ- [सीदुण्ह] शीत व उष्णकाल **[वाउ-पिउलं-सिलेसिमं]** वात-पित्त-कफ **[परिसमं]** परिश्रम **[तह]** तथा **[वाहिं]** व्याधि **[कायकिलेसुववासं]** काय-क्लेश, उपवास **[जाणिज्जे]** जानकर **[दाणं]** दान **[दिण्णए]** दिया जाता है।

शीत व उष्णकाल, वात-पित्त-कफ, परिश्रम तथा व्याधि, काय-क्लेश, उपवास जानकर दान दिया जाता है।

हियमियमण्णं पाणं णिरवज्जोसहिं णिराउलं ठाणं ।
सयणासणमुवयरणं जाणिज्जा देइ मोक्खमग्गरओ ॥24॥

अन्वयार्थ- [मोक्ख-मग्ग-रओ] मोक्ष मार्ग में रत व्यक्ति **[हियमियं]** हितकर-मित **[अण्णं]** अन्न को **[पाणं]** पेय पदार्थों को **[णिरवज्जोसहिं]** निर्दोष औषधि को **[णिराउलं]** निराकुल **[ठाणं]** स्थान को **[सयणासणं-उवयरणं]** शयन और आसन/बैठने के उपकरण **[जाणिज्जा]** आवश्यकता जानकर **[देइ]** देता है।

मोक्ष मार्ग में रत व्यक्ति हितकर-मित अन्न को, पेय पदार्थों को, निर्दोष औषधि को, निराकुल स्थान को, शयन और आसन/बैठने के उपकरण आवश्यकता जानकर देता है।

अणयाराणं वेज्जावच्चं कुज्जा जहेह जाणिज्जा ।
गब्भब्भमेव मादा पिदु वा णिच्चं तहा णिरालसया ॥25॥

अन्वयार्थ- [जहेह] जैसे इस लोक में **[मादा पिदु वा]** माता और पिता **[गब्भब्भमेव]** गर्भ स्थित शिशु का/गर्भ से उत्पन्न शिशु का सावधानी से पालन करते हैं **[तहा]** उसी प्रकार **[णिच्चं]** सदा **[णिरालसया]** आलस्य रहित होकर **[अणयाराणं]** मुनियों की **[जाणिज्जा]** प्रकृति आदि जानकर **[वेज्जावच्चं]** वैय्यावृत्य **[कुज्जा]** करनी चाहिये।

जैसे इस लोक में माता और पिता गर्भ स्थित शिशु का/गर्भ से उत्पन्न शिशु का सावधानी से पालन करते हैं उसी प्रकार सदा आलस्य रहित होकर मुनियों की प्रकृति आदि जानकर वैय्यावृत्य करनी चाहिये।

सप्पुरिसाणं दाणं कप्पतरूणं फलाण सोहं वा ।
लोहीणं दाणं जइ विमाण-सोहा सवस्स जाणेह ॥26॥

अन्वयार्थ- [सप्पुरिसाणं] सत्पुरुषों/सम्यग्दृष्टि का **[दाणं]** दान **[कप्पतरूणं]** कल्पवृक्ष के **[फलाण]** फलों की **[सोहं]** शोभा **[वा]** समान होता है **[लोहीणं]** लोभी पुरुषों का **[जइ]** जो **[दाणं]** दान है वह **[विमाण सवस्स]** अर्थी के शव के समान **[सोहा]** शोभा है **[जाणेह]** ऐसा जानो।

सत्पुरुषों/सम्यग्दृष्टि का दान कल्पवृक्ष के फलों की शोभा समान होता है; लोभी पुरुषों का जो दान है वह अर्थी के शव के समान शोभा है ऐसा जानो।

जसकित्ति-पुण्णलाहे देइ सुबहुगं पि जत्थ तत्थेव ।
सम्माइ-सुगुण-भायण-पत्तविसेसं ण जाणंति ॥27॥

अन्वयार्थ- {लोभी पुरुष} **[जस]** यश **[कित्ति]** कीर्ति {और} **[पुण्णलाहे]** पुण्य लाभ प्राप्ति के लिए **[जत्थ तत्थेव]** यत्र-तत्र {पात्र की अपेक्षा न कर} कुपात्र-अपात्र में **[सुबहुगं पि]** बहुत भी **[देइ]** दान देता है वह **[सम्माइ-सुगुण-भायण]** सम्यक्त्व आदि उत्तम गुणों के भाजन/आधार/स्वामी **[पत्तविसेसं]** सुपात्र/पात्र विशेष **[ण]** नहीं **[जाणंति]** जानते हैं।

लोभी पुरुष यश, कीर्ति और पुण्य लाभ प्राप्ति के लिए यत्र-तत्र पात्र की अपेक्षा न कर कुपात्र-अपात्र में बहुत भी दान देता है वह सम्यक्त्व आदि उत्तम गुणों के भाजन/आधार/स्वामी सुपात्र/पात्र विशेष नहीं जानते हैं।

जंतं मंतं तंतं परिचरियं पक्खवाय-पियवयणं ।
पडुच्च पंचमयाले भरहे दाणं ण किं पि मोक्खस्स ॥28॥

अन्वयार्थ- [भरहे] भरतक्षेत्र में **[पंचमयाले]** पंचमकाल में **[जंतं मंतं तंतं]** यंत्र-मंत्र-तंत्र **[परिचरियं]** परिचर्या/सेवा **[पक्खवाय]** पक्षपात **[पियवयणं]** प्रियवचन **[पडुच्च]** प्रतीति/विश्वास के लिए दिया हुआ **[किं पि]** कोई भी **[दाणं]** दान **[मोक्खस्स ण]** मोक्ष का कारण नहीं है।

भरतक्षेत्र में पंचमकाल में यंत्र-मंत्र-तंत्र, परिचर्या/सेवा, पक्षपात प्रियवचन, प्रतीति/विश्वास के लिए दिया हुआ कोई भी दान मोक्ष का कारण नहीं है।

दाणीणं दारिद्दं लोहीणं किं हवेइ महसिरियं ।
उहयाणं पुव्वज्जिय-कम्मफलं जाव होइ थिरं ॥29॥

अन्वयार्थ- **[दाणीणं]** दानी जीवों के **[दारिद्दं]** दरिद्रता **[लोहीणं]** लोभी जीवों के **[महसिरियं]** महा-ऐश्वर्य **[किं]** क्यों **[हवेइ]** होता है **[उहयाणं]** दोनों के **[पुव्वज्जिय-कम्मफलं]** पूर्वोपार्जित कर्मफल **[जाव]** जब तक **[थिरं]** स्थिर {उदय में} **[होइ]** रहता है।

संसार में दानियों के दरिद्रता और लोभी पुरुषों के महान ऐश्वर्य क्यों होता है? इन दोनों का कारण पूर्वोपार्जित कर्म का फल है और वह कर्म जब तक बना रहेगा, तब तक वैसी दशा बनी रहेगी।

धणधण्णाइ-समिद्धे सुहं जहा होइ सव्वजीवाणं ।
मुणिदाणाइ-समिद्धे सुहं तहा तं विणा दुक्खं ॥30॥

अन्वयार्थ- **[जहा]** जिस प्रकार **[धणधण्णाइ-समिद्धे]** धन-धान्य आदि की समृद्धि से **[सव्वजीवाणं]** सब जीवों को **[सुहं]** सुख **[होइ]** होता है **[तहा]** उसी प्रकार **[मुणिदाणाइ-समिद्धे]** मुनि-दान आदि की समृद्धि से **[सव्वजीवाणं]** सब जीवों को **[सुहं]** सुख होता है। **[तं]** मुनि दान **[विणा]** बिना **[दुक्खं]** दुःख होता है।

जिस प्रकार धन-धान्य आदि की समृद्धि से सब जीवों को सुख होता है उसी प्रकार मुनि-दान आदि की समृद्धि से सब जीवों को सुख होता है। मुनि दान बिना दुःख होता है।

पत्त-विणा दाणं च सुपुत्त-विणा बहुधणं महाखेत्तं ।
चित्त-विणा वय-गुण-चारित्तं णिक्कारणं जाणे ॥31॥

अन्वयार्थ- {जिस प्रकार} **[सुपुत्त विणा]** सुपुत्र के बिना **[बहुधणं]** बहुत सा धन **[महाखेत्तं]** महाक्षेत्र-मकान/जमीन/ जायदाद **[चित्त-विणा]** भावों {की पवित्रता} बिना **[वय-गुण- चारित्तं]** व्रत गुण चारित्र **[णिक्कारणं]** निष्कारण/निष्प्रयोजन है {उसी प्रकार} **[पत्त-विणा]** सुपात्र के बिना **[दाणं]** दान **[णिक्कारणं]** निष्प्रयोजन **[जाणे]** जानो।

जिस प्रकार सुपुत्र के बिना बहुत सा धन महाक्षेत्र-मकान/ जमीन/जायदाद, भावों की पवित्रता बिना व्रत-गुण-चारित्र निष्कारण/निष्प्रयोजन है उसी प्रकार सुपात्र के बिना दान निष्प्रयोजन जानो।

जिण्णुद्धार-पइट्ठा-जिणपूया-तित्थवंदण-सेसधणं ।
जो भुंजइ सो भुंजइ जिणुद्दिट्ठं णरय-गइ-दुक्खं ॥32॥

अन्वयार्थ- **[जो]** जो **[जिण्णुद्धारं]** जीर्णोद्धार **[पइट्ठा]** प्रतिष्ठा **[जिणपूया]** जिनपूजा **[तित्थवंदण]** तीर्थयात्रा के **[सेसधण]** अवशिष्ट धन को **[भुंजइ]** भोगता है **[सो]** वह **[णरय-गइ]** नरकगति के **[दुक्खं]** दुःखों को **[भुंजइ]** भोगता है ऐसा **[जिणुद्दिट्ठं]** जिनेन्द्र देव ने कहा है।

जो जीर्णोद्धार, प्रतिष्ठा, जिनपूजा, तीर्थयात्रा के अवशिष्ट धन को भोगता है वह नरकगति के दुःखों को भोगता है ऐसा जिनेन्द्र देव ने कहा है।

पुत्त-कलत्त-विदूरो दारिद्दो पंगु-मूक-बहिरंधो ।
चांडालाइ-कुजाई पूयादाणाइ-दव्वहरो ॥33॥

अन्वयार्थ- [पूयादाणाइ] पूजा दान आदि के **[दव्वहरो]** द्रव्य को अपहरण करने वाला **[पुत्त-कलत्त-विदूरो]** पुत्र-स्त्री रहित **[दारिद्दो]** दारिद्र **[पंगु-मूक-बहिरंधो]** लँगड़ा, गूँगा, बहरा, अंधा होता है और **[चांडालाइ]** चाण्डाल आदि **[कुजाई]** कुजाति में उत्पन्न होता है।

पूजा, दान आदि के द्रव्य को अपहरण करने वाला पुत्र-स्त्री रहित दारिद्र, लँगड़ा, गूँगा, बहरा, अंधा होता है और चाण्डाल आदि कुजाति में उत्पन्न होता है।

इच्छिय-फलं ण लब्भइ जइ लब्भइ सो ण भुंजदे णियदं ।
वाहीणमायरो सो पूयादाणाइ-दव्वहरो ॥34॥

अन्वयार्थ- [पूयादाणाइ दव्वहरो] पूजा दान आदि धर्म द्रव्य का अपहरण करने वाला **[इच्छिय]** इच्छित **[फलं]** फल को **[ण]** नहीं **[लब्भइ]** प्राप्त करता है **[जइ]** यदि **[लब्भइ]** इच्छित फल को भी प्राप्त करे-तो **[सो]** वह **[णियदं]** निश्चित रूप से **[भुंजदे]** भोगता **[ण]** नहीं है **[सो]** वह **[वाहीणमायरो]** व्याधियों/बीमारियों का घर बन जाता है।

पूजा, दान आदि धर्म द्रव्य का अपहरण करने वाला इच्छित फल को नहीं प्राप्त करता है यदि इच्छित फल को भी प्राप्त करे तो वह निश्चित रूप से भोगता नहीं है वह व्याधियों/बीमारियों का घर बन जाता है।

गय-हत्थ-पाय-णासिय-कण्ण-उरंगुल विहीण-दिट्ठीए ।
जो तिव्व-दुक्ख-मूलो पूयादाणाइ-दव्वहरो ॥35॥

अन्वयार्थ- [जो] जो जीव **[पूयादाणाइ दव्वहरो]** पूजा-दान आदि के धर्म-द्रव्य का अपहरण करने वाला है- वह **[गय-हत्थ-पाय-णासिय-कण्ण-उरंगुल]** हाथ-पैर नासिका-कान-छाती और अंगुल से हीन और **[विहीण-दिट्ठीए]** दृष्टि से विहीन/अंधा होता है और **[तिव्व-दुक्ख-मूलो]** तीव्र दुःख को प्राप्त होता है।

जो जीव पूजा-दान आदि के धर्म-द्रव्य का अपहरण करने वाला है वह हाथ, पैर, नासिका, कान, छाती और अंगुल से हीन और दृष्टि से विहीन/अंधा होता है और तीव्र दुःख को प्राप्त होता है।

खय-कुट्ठ-मूल-सूलो लूय-भयंदर-जलोयरक्खि-सिरो ।
सीदुण्ह-वाहि-राई पूया-दाणंतराय-कम्मफलं ॥36॥

अन्वयार्थ- [खय-कुट्ठ-मूल-सूलो] क्षय रोग, कुष्ठ रोग, मूल व्याधि, शूल **[लूय]** लूता {वायु का एक रोग अथवा मकड़ी का फरना} **[भयंदर]** भगंदर **[जलोयरक्खि-सिरो]** जलोदर अक्षी/नेत्र रोग, सिर पीड़ा/सिर के रोग **[सीदुण्ह-वाहि-राइ]** शीत से, उष्णता से, शीतोष्ण से होने वाली सन्निपात आदि व्याधियाँ- ये सब **[पूया-दाणंतराय-कम्मफलं]** पूजा-दान आदि धर्म कार्यों में किये गये अन्तराय कर्म का फल है।

क्षय रोग, कुष्ठ रोग, मूल व्याधि, शूल, लूता {वायु का एक रोग अथवा मकड़ी का फरना} भगंदर, जलोदर अक्षी/नेत्र रोग, सिर

पीड़ा/सिर के रोग, शीत से, उष्णता से, शीतोष्ण से होने वाली सन्निपात आदि व्याधियाँ- ये सब पूजा-दान आदि धर्म कार्यों में किये गये अन्तराय कर्म का फल है।

णिरय-तिरियाइ-दुग्गई दरिद्द-वियलंग-हाणि-दुक्खाइं ।
देव-गुरु-सत्थवंदण-सुयभेय-सज्झाय-विग्घफलं ॥37॥

अन्वयार्थ- [णिरय] नरक **[तिरियाइ]** तिर्यंच आदि **[दुग्गई]** दुर्गति **[दरिद्द]** दरिद्रता **[वियलंग]** विकलांग **[हाणि]** हानि {व्यापारादि कार्यों में} **[दुक्खाइं]** और दुख ये सब **[देव-गुरु-सत्थवंदण]** देव-वन्दना, गुरु-वन्दना, शास्त्र-वन्दना **[सुयभेय-सज्झय-विग्घफलं]** श्रुतभेद, स्वाध्याय में विघ्न करने का फल है।

नरक-तिर्यंच आदि दुर्गति, दरिद्रता, विकलांग, हानि {व्यापारादि कार्यों में} और दुख ये सब देव-वन्दना, गुरु-वन्दना, शास्त्र-वन्दना, श्रुतभेद, स्वाध्याय में विघ्न करने का फल है।

सम्मविसोही-तव-गुण-चारित्त-सण्णाण-दाण-परिहीणं ।
भरहे दुस्समयाले मणुयाणं जायदे णियदं ॥38॥

अन्वयार्थ- इस **[भरहे]** भरतक्षेत्र में **[दुस्समयाले]** दुःखमा पञ्चमकाल में **[मणुयाणं]** मनुष्यों के **[सम्मविसोही]** सम्यक्त्व की विशुद्धि **[तव-गुण-चारित्त-सण्णाण-दाण परिहीणं]** तप, गुण, चारित्र, सम्यक्-ज्ञान, दान में परिहीनता **[णियदं]** निश्चित ही **[जायदे]** होती है।

इस भरतक्षेत्र में दुःखमा पञ्चमकाल में मनुष्यों के सम्यक्त्व की विशुद्धि, तप, गुण, चारित्र, सम्यक्-ज्ञान, दान में परिहीनता निश्चित ही होती है।

णहि दाणं णहि पूया णहि सीलं णहि गुणं ण चारित्तं ।
जे जइणा भणिया ते णेरइया होंति कुमाणुसा तिरिया ॥39॥

अन्वयार्थ- **[जे]** जो मनुष्य **[णहि]** न ही **[दाणं]** दान देते हैं **[णहि]** न ही **[पूया]** पूजा करते हैं **[णहि]** न ही **[सीलं]** शील पालते हैं **[णहि]** न ही **[गुणं]** मूलगुण धारण करते हैं और **[ण]** न **[चारित्तं]** चारित्र पालन करते हैं **[ते]** वे मनुष्य **[णेरइया]** नारकी **[कुमाणुसा]** कुमानुष और **[तिरिया]** तिर्यंच **[होंति]** होते हैं ऐसा **[जइणा]** जिनदेव ने **[भणिया]** कहा है।

जो मनुष्य न ही दान देते हैं, न ही पूजा करते हैं, न ही शील पालते हैं, न ही मूलगुण धारण करते हैं और न चारित्र पालन करते हैं वे मनुष्य नारकी, कुमानुष और तिर्यंच होते हैं ऐसा जिनदेव ने कहा है।

णवि जाणइ कज्जमकज्जं सेयमसेयं पुण्णपावं हि ।
तच्चमतच्चं धम्ममधम्मं सो सम्म-उम्मुक्को ॥40॥

अन्वयार्थ- {जो} **[कज्जमकज्जं]** कार्य अकार्य/कर्तव्य-अकर्तव्य **[सेयमसेयं]** कल्याण-अकल्याण **[पुण्णपावं]** पुण्य-पाप **[तच्चमतच्चं]** तत्त्व-अतत्त्व **[धम्ममधम्मं]** धर्म-अधर्म को **[णवि]** नहीं **[जाणइ]** जानता है **[सो]** वह **[हि]** निश्चय से **[सम्म-उम्मुक्को]** सम्यक्त्व से रहित है।

जो कार्य-अकार्य/कर्तव्य-अकर्तव्य, कल्याण-अकल्याण, पुण्य-पाप, तत्त्व-अतत्त्व, धर्म-अधर्म को नहीं जानता है वह निश्चय से सम्यक्त्व से रहित है।

णवि जाणइ जोग्गमजोग्गं णिच्चमणिच्चं हेयमुवादेयं ।
सच्चमसच्चं भव्वमभव्वं सो सम्म-उम्मुक्को ॥41॥

अन्वयार्थ- {जो} **[जोग्गमजोग्गं]** योग्य-अयोग्य **[णिच्चमणिच्चं]** नित्य-अनित्य **[हेयमुवादेयं]** हेय-उपादेय **[सच्चमसच्चं]** सत्य-असत्य **[भव्वमभव्वं]** भव्य-अभव्य को **[णवि]** नहीं **[जाणइ]** जानता है **[सो]** वह **[सम्म-उम्मुक्को]** सम्यक्त्व से रहित है।

जो योग्य-अयोग्य, नित्य-अनित्य, हेय-उपादेय, सत्य-असत्य, भव्य-अभव्य को नहीं जानता है वह सम्यक्त्व से रहित है।

लोइय-जण-संगादो होइ मइमुहर-कुडिल-दुब्भावो ।
लोइय-संगं तम्हा जोइवि तिविहेण मुंचाहो ॥42॥

अन्वयार्थ- मनुष्य **[लोइय-जण-संगादो]** लौकिक जनों की संगति से **[मइमुहर-कुडिल-दुब्भावो]** महा-वाचाल, कुटिल, दुर्भाव युक्त **[होइ]** हो जाता है **[तम्हा]** इसलिये **[जोइवि]** अच्छी तरह देख-भाल कर **[लोइय-संगं]** लौकिक जनों की संगति को **[तिविहेण]** तीनों प्रकार मन-वचन-काय से **[मुंचाहो]** छोड़ देना चाहिये।

{मनुष्य} लौकिक जनों की संगति से महा-वाचाल, कुटिल, दुर्भाव युक्त हो जाता है इसलिये अच्छी तरह देखभाल कर लौकिक जनों की संगति को तीनों प्रकार मन-वचन-काय से छोड़ देना चाहिये।

उग्गो तिव्वो दुट्ठो दुब्भावो दुस्सुदो दुरालावो ।
दुम्मइ-रदो विरुद्धो सो जीवो सम्म-उम्मुक्को ॥43॥

अन्वयार्थ- जो जीव **[उग्गो]** उग्र **[तिव्वो]** तीव्र **[दुट्ठो]** दुष्ट **[दुब्भावो]** दुर्भावनायुक्त **[दुस्सुदो]** मिथ्या शास्त्रों को सुनने वाला **[दुरालावो]** दुष्ट वचनालाप करने वाला/दुष्टभासी **[दुम्मइ-रदो]** मिथ्या अभिमान/अहंकार में रत और **[विरुद्धो]** आत्मधर्म के विरुद्ध/देव-शास्त्र-गुरु की आज्ञा के विरुद्ध है **[सो जीवो]** वह जीव **[सम्म-उम्मुक्को]** सम्यक्दर्शन से रहित है।

जो जीव उग्र, तीव्र, दुष्ट, दुर्भावनायुक्त, मिथ्या शास्त्रों को सुनने वाला, दुष्ट वचनालाप करने वाला/दुष्टभासी, मिथ्या अभिमान/ अहंकार में रत और आत्मधर्म के विरुद्ध/देव-शास्त्र-गुरु की आज्ञा के विरुद्ध है वह जीव सम्यक्दर्शन से रहित है।

खुद्दो रुद्दो रुट्ठो अणिट्ठ-पिसुणो सगव्वियोऽसूयो ।
गायण-जायण-भंडण-दुस्सण-सीलो दु सम्म-उम्मुक्को ॥44॥

अन्वयार्थ- **[खुद्दो]** क्षुद्र प्रकृति वाले **[रुद्दो]** रुद्र प्रकृति वाले **[रुट्ठो]** रुष्ट प्रकृति वाले **[अणिट्ठ]** दूसरों का अनिष्ट चाहने वाले **[पिसुणो]** चुगलखोर **[सगव्वियो]** गर्व सहित **[असूयो]** ईर्ष्यालु **[गायण]** गायक **[जायण]** याचक **[भंडण]** गाली देने वाले/कलह करने वाले **[दु]** और **[दुस्सण-सीलो]** दूसरों को दोष लगाना स्वभाव है जिसका- ये सब **[सम्म-उम्मुक्को]** सम्यग्दर्शन से रहित होते हैं।

क्षुद्र प्रकृति वाले, रुद्र प्रकृति वाले, रुष्ट प्रकृति वाले, दूसरों का अनिष्ट चाहने वाले, चुगलखोर, गर्व सहित, ईर्ष्यालु, गायक,

याचक, गाली देने वाले/कलह करने वाले और दूसरों को दोष लगाना स्वभाव है जिसका- ये सब सम्यग्दर्शन से रहित होते हैं।

वाणर-गद्दह-साण-गय-वग्घ-वराह-कराह ।
मक्खि-जलूय-सहाव-णर जिणवर-धम्म-विणासु ॥45॥

अन्वयार्थ- [वाणर] बन्दर **[गद्दह]** गधा **[साण]** कुत्ता **[वग्घ]** बाघ **[वराह]** सूकर/सुअर **[कराह]** कछुआ/कच्छप **[मक्खि]** मक्खी **[जलूय]** जोंक **[सहाव-णर]** स्वभाव वाले मनुष्य **[जिणवर-धम्म]** जिनवर धर्म के **[विणासु]** विनाशक हैं।

बन्दर, गधा, कुत्ता, बाघ, सूकर/सुअर, कछुआ/कच्छप, मक्खी, जोंक स्वभाव वाले मनुष्य जिनवर धर्म के विनाशक हैं।

सम्म-विणा सण्णाणं सच्चारित्तं ण होइ णियमेण ।
तो रयणत्तय-मज्झे सम्मगुणुक्किट्ठमिदि जिणुद्दिट्ठं ॥46॥

अन्वयार्थ- [सम्म-विणा] सम्यग्दर्शन के बिना **[सण्णाणं]** सम्यग्ज्ञान व **[सच्चारित्तं]** सम्यग्चारित्र **[णियमेण]** नियम से **[ण]** नहीं **[होइ]** होते हैं **[तो]** इसीलिये **[रयणत्तय-मज्झे]** रत्नत्रय में **[सम्मगुणुक्किट्ठं]** सम्यग्दर्शन गुण उत्कृष्ट है **[इदि]** ऐसा **[जिणुद्दिट्ठं]** जिनेन्द्र देव ने कहा है।

सम्यग्दर्शन के बिना सम्यग्ज्ञान व सम्यग्चारित्र नियम से नहीं होते हैं इसीलिये रत्नत्रय में सम्यग्दर्शन गुण उत्कृष्ट है ऐसा जिनेन्द्र देव ने कहा है।

कुतव-कुलिंग-कुणाणी-कुवय-कुसील-कुदंसण-कुसत्थे ।
कुणिमित्ते संथुय थुइ पसंसणं सम्महाणि होइ णियमं ॥47॥

अन्वयार्थ- [कुतव] कुतप **[कुलिंग]** कुलिंगी/मिथ्यावेष धारण करने वाले में **[कुणाणी]** मिथ्याज्ञानी में **[कुवय]** कुव्रत में **[कुसील]** कुशील/मिथ्याशील में **[कुदंसण]** मिथ्यादर्शन में **[कुसत्थे]** कुशास्त्र में **[कुणिमित्ते]** मिथ्या निमित्तों में **[थुइ]** स्तुति **[संथुय]** संस्तुति तथा **[पसंसणं]** प्रशंसा करने से **[णियमं]** नियम से **[सम्महाणि]** सम्यक्त्व की हानि **[होइ]** होती है।

कुतप, कुलिंगी/मिथ्यावेष धारण करने वाले में, मिथ्याज्ञानी में, कुव्रत में, कुशील/मिथ्याशील में, मिथ्यादर्शन में, कुशास्त्र में, मिथ्या निमित्तों में स्तुति, संस्तुति तथा प्रशंसा करने से नियम से सम्यक्त्व की हानि होती है।

तणुकुट्ठी कुलभंगं कुणइ जहा मिच्छमप्पणो वि तहा ।
दाणाइ-सुगुणभंगं गइभंगं मिच्छत्तमेव हो कट्ठं ॥48॥

अन्वयार्थ- [जहा] जैसे **[तणुकुट्ठी]** शरीर का कोढ़ी व्यक्ति **[कुल-भंगं कुणइ]** कुल का नाश करता है **[तहा]** उसी प्रकार **[मिच्छं वि]** मिथ्यात्व भी **[अप्पणो]** आत्मा के **[दाणाइ-सुगुणभंगं]** दान आदि उत्तम गुणों का नाश करने वाला और **[गइभंगं]** सद्गति का नाशक हैं **[हो]** अहो **[मिच्छत्तमेव कट्ठं]** मिथ्यात्व ही कष्ट है।

जैसे शरीर का कोढ़ी व्यक्ति कुल का नाश करता है उसी प्रकार मिथ्यात्व भी आत्मा के दान आदि उत्तम गुणों का नाश करने वाला

और सद्गति का नाशक है, अहो मिथ्यात्व ही कष्ट है।

देव-गुरु-धम्म-गुण-चारित्तं तवायार-मोक्ख-गइ-भेयं ।
जिणवयण-सुदिट्ठि-विणा दीसइ किह जाणए सम्मं ॥49॥

अन्वयार्थ- [देव-गुरु-धम्म-गुण-चारित्तं तवायार-मोक्ख-गइ-भेयं] देव-गुरु-धर्म-गुण-चारित्र तपाचार मोक्षगति का रहस्य **[जिणवयण]** जिनदेव के वचन **[सुदिट्ठि-विणा]** सम्यग्दृष्टि बिना **[किह]** क्या **[सम्मं]** समीचीन रूप से **[दीसइ-जाणए]** देखे-जाने जा सकते हैं? {अर्थात् नहीं। सम्यग्दृष्टि के द्वारा ही सम्यक् प्रकारेण देखे जा सकते हैं व जाने जा सकते हैं।}

देव, गुरु, धर्म, गुण, चारित्र, तपाचार, मोक्षगति का रहस्य, जिनदेव के वचन, सम्यग्दृष्टि बिना क्या समीचीन रूप से देखे-जाने जा सकते हैं? {अर्थात् नहीं। सम्यग्दृष्टि के द्वारा ही सम्यक् प्रकारेण देखे जा सकते हैं व जाने जा सकते हैं।}

एक्कु खणं ण वि चिंतइ मोक्ख-णिमित्तं णियप्प-साहावं ।
अणिसं विचिंतइ पावं बहुलालावं मणे विचिंतेइ ॥50॥

अन्वयार्थ- {मिथ्यादृष्टि जीव} **[मोक्ख-णिमित्तं]** मुक्ति प्राप्ति में निमित्तभूत **[णियप्प-सहावं]** अपने आत्म स्वभाव को **[एक्कु खणं वि]** एक क्षण मात्र भी **[चिंतइ]** चिंतन **[ण]** नहीं करता है **[अणिसं]** निरन्तर/रात-दिन **[पावं]** पाप का **[विचिंतइ]** चिंतन करता है और **[मणे]** मन में **[बहुलालावं]** बहुत सा दूसरों के प्रति **[विचिंतेइ]** सोचता रहता है।

मिथ्यादृष्टि जीव मुक्ति प्राप्ति में निमित्तभूत अपने आत्म स्वभाव को एक क्षण मात्र भी चिंतन नहीं करता है निरन्तर/रात-दिन पाप का चिंतन करता है और मन में बहुत सा दूसरों के प्रति सोचता रहता है।

मिच्छामइ-मय-मोहासव-मत्तो बोल्लए जहा भुल्लो ।
तेण ण जाणइ अप्पा अप्पाणं सम्मभावाणं ॥51॥

अन्वयार्थ- [मिच्छामइ] मिथ्यादृष्टि जीव **[जहा भुल्लो]** भुलक्कड़ के समान **[मय-मोहासव-मत्तो-बोल्लए]** मद-मोह रूपी मदिरा से मस्त होकर व्यर्थ बोलता है **[तेण]** इसलिये वह **[अप्पा]** आत्मा और **[अप्पाणं]** आत्मा के **[सम्मभावाणं]** साम्य भाव को **[ण]** नहीं **[जाणइ]** जानता है।

मिथ्यादृष्टि जीव भुलक्कड़ के समान मद-मोह रूपी मदिरा से मस्त होकर व्यर्थ बोलता है इसलिये वह आत्मा और आत्मा के साम्य भाव को नहीं जानता है।

पुव्वट्ठियं खवइ कम्मं पइसदु णो देइ अहिणवं कम्मं ।
इह-परलोय-महप्पं देइ तहा उवसमो भावो ॥52॥

अन्वयार्थ- {भव्य जीवों का} **[उवसमो भावो]** उपशम भाव **[पुव्वट्ठियं कम्मं]** पूर्वस्थित/पूर्वबद्धकर्मों का **[खवइ]** क्षय करता है **[अहिणवं कम्मं]** अभिनव कर्मों को **[पइसदु णो देइ]** प्रवेश नहीं देता है **[तहा]** तथा **[इह-परलोय]** इस लोक व परलोक में **[महप्पं]** महत्व/माहात्म्य को **[देइ]** देता है।

{भव्य जीवों का} उपशम भाव पूर्वस्थित/पूर्वबद्धकर्मों का क्षय करता है, अभिनव कर्मों को प्रवेश नहीं देता है तथा इस लोक व परलोक में महत्व/माहात्म्य को देता है।

सम्माइट्ठी कालं बोल्लइ वेरग्ग-णाण-भावेहिं ।
मिच्छाइट्ठी वांछा-दुब्भावालस्स-कलहेहिं ॥53॥

अन्वयार्थ- [सम्माइट्ठी] सम्यग्दृष्टि **[कालं]** का समय **[वेरग्ग-णाण- भावेहिं]** वैराग्य और ज्ञान भाव से **[बोल्लइ]** बीतता है **[मिच्छाइट्ठी कालं]** मिथ्यादृष्टि का समय **[वांछा]** इच्छा/ वांछा/तृष्णा/ **[दुब्भावालस्स]** दुर्भाव/अशुभभाव व आलस्य तथा **[कलहेहिं]** कलह झगड़े में बीतता है।

सम्यग्दृष्टि का समय वैराग्य और ज्ञान भाव से बीतता है; मिथ्यादृष्टि का समय इच्छा/वांछा/तृष्णा, दुर्भाव/अशुभभाव व आलस्य तथा कलह झगड़े में बीतता है।

अज्जवसप्पिणि भरहे पउरा रुद्दट्ठ-झाणया दिट्ठा ।
णट्ठा दुट्ठा कट्ठा पाविट्ठा किण्ह-णील-काओदा ॥54॥

अन्वयार्थ- [अज्जवसप्पिणि] आज वर्तमान/हुण्डावसर्पिणी काल में **[भरहे]** भरत क्षेत्र में **[रूद्दट्ठ-झाणया]** रौद्र व आर्त्तध्यान युक्त जीव **[णट्ठा]** नष्ट **[दुट्ठा]** दुष्ट **[कट्ठा]** कष्ट **[पाविट्ठा]** पापिष्ट **[किण्ह-णील-काओदा]** कृष्ण-नील-कापोत लेश्या वाले **[पउरा]** अधिक **[दिट्ठा]** देखे जाते हैं।

आज वर्तमान/हुण्डावसर्पिणी काल में भरत क्षेत्र में रौद्र व आर्त्तध्यान युक्त जीव नष्ट, दुष्ट, कष्ट, पापिष्ट, कृष्ण-नील-कापोत लेश्या वाले अधिक देखे जाते हैं।

अज्जवसप्पिणि भरहे पंचमयाले मिच्छपुव्वया सुलहा ।
सम्मत्तपुव्व-सायारणयारा दुल्लहा होंति ॥55॥

अन्वयार्थ- [अज्जवसप्पिणि] आज/वर्तमान अवसर्पिणी {हुण्डावसर्पिणी} काल में **[भरहे]** भरत क्षेत्र में **[पंचमयाले]** पंचम/दुःखम काल में **[मिच्छपुव्वया]** मिथ्यादृष्टि जीव **[सुलहा]** सुलभ हैं, किन्तु **[सम्मत्तपुव्व]** सम्यग्दृष्टि **[सायारणयारा]** गृहस्थ और मुनि दोनों **[दुल्लहा]** दुर्लभ **[होंति]** होते हैं।

आज/वर्तमान अवसर्पिणी {हुण्डावसर्पिणी} काल में भरत क्षेत्र में पंचम/दुःखम काल में मिथ्यादृष्टि जीव सुलभ हैं, किन्तु सम्यग्दृष्टि गृहस्थ और मुनि दोनों दुर्लभ होते हैं।

कतक-फल-भरिय-णिम्मल-जलं ववगय-कालिया-सुवण्णं च ।
मलरहिय-सम्मजुत्तो भव्ववरो लहइ लहु सोक्खं ॥55॥[1]

अन्वयार्थ- [कतक-फल] निर्मली **[भरिय]** भरित/युक्त **[णिम्मल जलं]** निर्मल/पवित्र जल **[च]** और **[ववगय-कालिया]** किट्टकालिमा से रहित **[सुवण्णं]** स्वर्ण {के समान} **[मलरहिय-सम्मजुत्तो]** २५ मल दोषों से रहित, सम्यक्त्व युक्त

[1] अन्य प्रति में उपलब्ध गाथा 55

[भव्ववरो] भव्योत्तम/निकटभव्य जीव **[लहु]** शीघ्र ही **[सोक्खं]** भुक्ति व मुक्ति के शाश्वत उत्तम सुख को **[लहइ]** प्राप्त करता है।

निर्मली भरित/युक्त निर्मल/पवित्र जल और किट्टकालिमा से रहित स्वर्ण के समान २५ मल दोषों से रहित, सम्यक्त्व युक्त भव्योत्तम/निकटभव्य जीव शीघ्र ही भुक्ति व मुक्ति के शाश्वत उत्तम सुख को प्राप्त करता है।

अज्जवसप्पिणि भरहे धम्मज्झाणं पमाद-रहिदो त्ति ।
होदि त्ति जिणुद्दिट्ठं ण हु मण्णइ सो हु कुदिट्ठी ॥56॥

अन्वयार्थ- **[भरहे]** भरतक्षेत्र में **[अज्जवसप्पिणि]** आज/इस वर्तमान अवसर्पिणी काल में **[धम्मज्झाणं]** धर्म्यध्यान **[पमाद-रहिदो त्ति]** प्रमाद-रहित **[होदि]** होता है **[त्ति]** ऐसा **[जिणुद्दिट्ठं]** जिनेन्द्रदेव ने कहा है। जो ऐसा **[ण हु मण्णइ]** नहीं मानता है **[सो]** वह **[हु]** निश्चय से **[कुदिट्ठी]** मिथ्यादृष्टि है।

भरतक्षेत्र में आज/इस वर्तमान अवसर्पिणी काल में धर्म्यध्यान प्रमाद-रहित होता है ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है। जो ऐसा नहीं मानता है वह निश्चय से मिथ्यादृष्टि है।

असुहादो णिरयाऊ सुहभावादो दु सग्ग-सुहमाओ ।
दुहसुह-भावं जाणउ जं ते रुच्चेइ तं कुज्जा ॥57॥

अन्वयार्थ- {हे भव्यात्माओं!} **[असुहादो णिरयाऊ]** अशुभ भावों से नरक आयु **[दु]** और **[सुहभावादो]** शुभ भावों से **[सग्ग-सुहमाओ]** स्वर्ग सुख व स्वर्ग आयु प्राप्त होती है। **[दुहसुह-**

भावं] दुख व सुख भावों को **[जाणउ]** जानो तथा **[ते]** तुम्हें **[जं]** जो **[रुच्चेइ]** रुचे **[तं]** उसको **[कुज्जा]** करो।

हे भव्यात्माओं! अशुभ भावों से नरक आयु और शुभ भावों से स्वर्ग सुख व स्वर्ग आयु प्राप्त होती है। दुख व सुख भावों को जानो तथा तुम्हें जो रुचे उसको करो।

हिंसाइसु कोहाइसु मिच्छाणाणेसु पक्खवाएसु ।
मच्छरिएसु मएसु दुरहिणिवेसेसु असुहलेस्सेसु ॥58॥
विकहाइसु रुद्दट्टज्झाणेसु असूयगेसु दंडेसु।
सल्लेसु गारवेसु य जो वट्टइ असुहभावो सो ॥59॥

अन्वयार्थ- [हिंसाइसु] हिंसा आदि में **[कोहाइसु]** क्रोध आदि में **[मिच्छाणाणेसु]** मिथ्या ज्ञानों में **[पक्खवाएसु]** पक्षपातों में **[मच्छरिएसु]** मात्सर्य में **[मएसु]** मदों में **[दुरहिणिवेसेसु]** दुरभिनिवेशों/दुष्ट अभिप्रायों में **[असुहलेस्सेसु]** अशुभलेश्याओं में **[विकहाइसु]** विकथाओं में **[रुद्दट्टज्झाणेसु]** रौद्र-आर्त्तध्यानों में **[असूयगेसु]** ईर्ष्या में **[दंडेसु]** असंयमों में **[सल्लेसु]** शल्यों में **[य]** और **[गारवेसु]** गारवों में **[जो]** जो **[वट्टइ]** वर्तन होता है **[सो]** वह **[असुहभावो]** अशुभ भाव है।

हिंसा आदि में, क्रोध आदि में, मिथ्या ज्ञानों में, पक्षपातों में, मात्सर्य में, मदों में, दुरभिनिवेशों/दुष्ट अभिप्रायों में, अशुभलेश्याओं में, विकथाओं में, रौद्र-आर्त्तध्यानों में, ईर्ष्या में, असंयमों में, शल्यों में और गारवों में जो वर्तन होता है वह अशुभ भाव है।

दव्वत्थिकाय-छप्पण तच्च-पयत्थेसु सत्त-णवएसु ।
बंधण-मुक्खे तक्कारणरूवे बारसणुवेक्खे ॥60॥
रयणत्तयस्सरूवे अज्जाकम्मे दयाइ-सद्धम्मे ।
इच्चेवमाइगे जो वट्टइ सो होइ सुहभावो ॥61॥

अन्वयार्थ- क्रमशः **[छप्पण]** छह पाँच **[दव्वत्थिकाय]** द्रव्य और अस्तिकाय **[तच्च-पयत्थेसु सत्त-णवएसु]** साततत्त्व नव-पदार्थ **[बंधण-मुक्खे]** बन्ध और मोक्ष **[तक्कारणरूवे]** उसके कारण स्वरूप **[बारसणुवेक्खे]** बारह अनुप्रेक्षाओं **[रयणत्तयस्सरूवे]** रत्नत्रय-स्वरूप **[अज्जाकम्मे]** आर्य कर्म में **[दयाइ-सद्धम्मे]** दया आदि सद्धर्म में **[इच्चेवमाइगे]** इत्यादि में **[जो]** जो **[वट्टइ]** वर्तन होता है **[सो]** वह **[सुहभावो]** शुभ भाव **[होइ]** होता है।

क्रमशः छह पाँच द्रव्य और अस्तिकाय, साततत्त्व, नव-पदार्थ, बन्ध और मोक्ष उसके कारण स्वरूप बारह अनुप्रेक्षाओं, रत्नत्रय-स्वरूप आर्य कर्म में, दया आदि सद्धर्म में इत्यादि में जो वर्तन होता है वह शुभ भाव होता है।

सम्मत्तगुणादो सुगइ मिच्छादो होइ दुग्गई णियमा ।
इदि जाण किमिह बहुणा जं ते रुच्चइ तं कुणहो ॥62॥

अन्वयार्थ- [सम्मत्तगुणादो] सम्यक्त्व आदि गुणों से **[सुगइ]** सुगति और **[मिच्छादो]** मिथ्यात्व से **[णियमा]** नियम से **[दुग्गइ]** दुर्गति **[होइ]** होती है। **[इदि]** इस प्रकार **[जाण]** जानो **[इह]** यहाँ **[बहुणा किं]** बहुत कहने से क्या लाभ? **[ते]** तुम्हें **[जं]** जो **[रुच्चइ]** अच्छा लगे **[तं]** वह **[कुणहो]** करो।

सम्यक्त्व आदि गुणों से सुगति और मिथ्यात्व से नियम से दुर्गति होती है। इस प्रकार जानो यहाँ बहुत कहने से क्या लाभ? तुम्हें जो अच्छा लगे वह करो।

मोहु ण छिज्जइ अप्पा दारुण-कम्मं करेइ बहुवारं ।
ण हु पावइ भवतीरं किं बहुदुक्खं वहेइ मूढमई ॥63॥

अन्वयार्थ- [अप्पा] यह आत्मा **[मोहु]** मोह को **[ण छिज्जइ]** नष्ट नहीं करता है **[दारुण-कम्मं]** दारुण कठिन कर्म-व्रत-उपवास आदि **[बहुवारं]** अनेक बार **[करेइ]** करता है। **[हु]** निश्चय से वह **[भवतीरं]** संसार-समुद्र का तीर/किनारा **[ण पावइ]** नहीं पाता है; फिर **[मूढमई]** यह मूर्ख **[बहुदुक्खं]** अनेक दुक्ख **[किं वहेइ]** क्यों वहन करता है। क्यों उठाता है।

यह आत्मा मोह को नष्ट नहीं करता है दारुण कठिन कर्म-व्रत-उपवास आदि अनेक बार करता है, निश्चय से वह संसार-समुद्र का तीर/किनारा नहीं पाता है; फिर यह मूर्ख अनेक दुक्ख क्यों वहन करता है? क्यों उठाता है?

धरियउ बाहिरलिंगं परिहरियउ बाहिरक्ख-सोक्खं हि ।
करियउ किरियाकम्मं मरियउ जम्मियउ बहिरप्प-जिऊ ॥64॥

अन्वयार्थ- [बहिरप्प-जिऊ] बहिरात्मा जीव **[बाहिरलिंगं]** बाह्य लिंग/बाह्यभेष मात्र को **[धरियउ]** धारणकर **[बाहिरक्ख-सोक्खं]** इन्द्रियजन्य बाह्य सुख को **[हि]** भी **[परिहरियउ]** छोड़कर **[किरियाकम्मं]** क्रियाकांड-व्रताचरण आदि **[करियउ]** करता हुआ **[जम्मियउ मरियउ]** जन्म-मरण करता रहता है।

बहिरात्मा जीव बाह्य लिंग/बाह्यभेष मात्र को धारणकर इन्द्रियजन्य बाह्य सुख को भी छोड़कर क्रियाकांड-व्रताचरण आदि करता हुआ जन्म-मरण करता रहता है।

मोक्ख-णिमित्तं दुक्खं वहेइ परलोय-दिट्ठि-तणुदंडी ।
मिच्छाभाव ण छिज्जइ किं पावइ मोक्ख-सोक्खं हि ॥65॥

अन्वयार्थ- **[परलोय-दिट्ठि]** परलोक पर दृष्टि रखने वाला **[तणुदंडी]** शरीर को कृश करने वाला/अनेक प्रकार के कायक्लेश करने वाला बहिरात्मा जीव **[मोक्ख-णिमित्तं]** मुक्ति के निमित्त **[दुक्खं वहेइ]** दुःख को सहन करता है; परन्तु **[मिच्छाभाव ण छिज्जइ]** मिथ्याभाव को/मिथ्यात्व का नाश नहीं करता- तब वह **[किं]** क्या **[हि]** निश्चय से/वस्तुतः **[मोक्ख-सोक्खं]** मुक्ति सुख को **[पावइ]** प्राप्त कर सकता है?

परलोक पर दृष्टि रखने वाला, शरीर को कृश करने वाला/अनेक प्रकार के कायक्लेश करने वाला बहिरात्मा जीव मुक्ति के निमित्त दुःख को सहन करता है; परन्तु मिथ्याभाव को/मिथ्यात्व का नाश नहीं करता- तब वह क्या निश्चय से/वस्तुतः मुक्ति सुख को प्राप्त कर सकता है?

ण हु दंडइ कोहाइं देहं दंडइ कहं खवइ कम्मं ।
सप्पो किं मुवइ तहा वम्मीए मारिए लोए ॥66॥

अन्वयार्थ- बहिरात्मा जीव **[कोहाइं]** क्रोधादि-क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेषादि को **[ण हु दंडइ]** दंडित नहीं करता **[देहं दंडइ]**

शरीर को दंडित करता है तो वह **[कहं]** किस प्रकार **[कम्मं खवइ]** कर्मों को क्षय करेगा/नष्ट कर सकता है **[तहा]** जैसे **[लोए]** लोक में **[वम्मीए]** बामी/साँप के बिल को **[मारिए]** मारने पर/नाश करने पर **[किं]** क्या **[सप्पो मुवइ]** साँप/सर्प मरता है।

बहिरात्मा जीव क्रोधादि-क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेषादि को दंडित नहीं करता, शरीर को दंडित करता है तो वह किस प्रकार कर्मों को क्षय करेगा/नष्ट कर सकता है, जैसे लोक में बामी/साँप के बिल को मारने पर/नाश करने पर क्या साँप/सर्प मरता है।

उवसम-तव-भाव-जुदो णाणी सो ताव-संजदो होइ ।
णाणी कसायवसगो असंजदो होइ सो ताव ॥67॥

अन्वयार्थ- जो **[णाणी]** ज्ञानी **[उपसम-तव-भाव-जुदो]** उपशम-तप-भाव से युक्त है **[सो]** वह **[ताव]** तब **[संजदो]** संयमी **[होइ]** होता है; **[णाणी]** ज्ञानी **[कसायवसगो]** जब कषाय के वश हो गया **[ताव]** तब **[सो]** वह **[असंजदो]** असंयत **[होइ]** होता है।

जो ज्ञानी उपशम-तप-भाव से युक्त है वह तब संयमी होता है; ज्ञानी जब कषाय के वश हो गया तब वह असंयत होता है।

णाणी खवेइ कम्मं णाण-बलेणेदि बोल्लए अण्णाणी ।
वेज्जो भेसज्जमहं जाणे इदि णस्सदे वाही ॥68॥

अन्वयार्थ- **[अण्णाणी]** अज्ञानी **[इदि]** इस प्रकार **[बोल्लए]** बोलता है कि **[णाणी]** ज्ञानी **[णाण-बलेण]** ज्ञान के बल से **[कम्मं]** कर्मों को **[खवेइ]** क्षय करता है। **[अहं]** मैं **[भेसज्जं]**

औषधि को **[जाणे]** जानता हूँ **[इदि]** इतना मात्र कहने से क्या **[वेज्जो]** वैद्य **[वाही]** व्याधि को **[णस्सदे]** नष्ट कर देता है?

अज्ञानी इस प्रकार बोलता है कि ज्ञानी ज्ञान के बल से कर्मों को क्षय करता है। मैं औषधि को जानता हूँ इतना मात्र कहने से क्या वैद्य व्याधि को नष्ट कर देता है?

पुव्वं सेवइ मिच्छा-मल-सोहण-हेउ-सम्म-भेसज्जं ।
पच्छा सेवइ कम्मामय-णासण-चरिय-भेसज्जं ॥69॥

अन्वयार्थ- **[पुव्वं]** प्रथमतः **[मिच्छा-मल-सोहण-हेउ]** मिथ्यात्व-रूपी मल के शोधन के कारण **[सम्म-भेसज्जं]** सम्यक्त्व-रूपी औषधि का **[सेवइ]** सेवन किया जाता है। **[पच्छा]** पश्चात् **[कम्मा-मय-णासण]** कर्म रूपी रोग का नाश करने के लिए **[चरिय-भेसज्जं]** चारित्र रूपी औषधि का **[सेवइ]** सेवन किया जाता है।

प्रथमतः मिथ्यात्व-रूपी मल के शोधन के कारण सम्यक्त्व-रूपी औषधि का सेवन किया जाता है। पश्चात् कर्म रूपी रोग का नाश करने के लिए चारित्र रूपी औषधि का सेवन किया जाता है।

अण्णाणी-विसय-विरत्तादो जो होइ सय-सहस्स-गुणो ।
णाणी कसाय-विरदो विसयासत्तो जिणुद्दिट्ठं ॥70॥

अन्वयार्थ- **[विसय-विरत्तादो]** विषयों से विरक्त **[अण्णाणी]** अज्ञानी की अपेक्षा **[विसयासत्तो]** विषयों में आसक्त किन्तु **[कसाय-विरदो]** कषाय से विरक्त **[णाणी]** ज्ञानी **[सय-सहस्स-गुणो]** लाख गुणा फल **[होइ]** प्राप्त करता है, **[जिणुद्दिट्ठं]** ऐसा जिनेन्द्र देव ने कहा है।

विषयों से विरक्त अज्ञानी की अपेक्षा विषयों में आसक्त किन्तु कषाय से विरक्त ज्ञानी लाख गुणा फल प्राप्त करता है, ऐसा जिनेन्द्र देव ने कहा है।

विणओ भत्ति-विहीणो महिलाणं रोदणं विणा णेहं ।
चागो वेरग्ग-विणा एदेदो वारिया भणिया ॥71॥

अन्वयार्थ- [भत्ति-विहीणो] भक्ति रहित **[विणओ]** विनय **[णेहं विणा]** स्नेह के बिना **[महिलाणं रोदणं]** महिलाओं का रोना/रुदन और **[वेरग्ग विणा]** वैराग्य के बिना **[चागो]** त्याग **[एदेदो]** ये सब **[वारिया]** निषेध/प्रतिषिद्ध **[भणिया]** कहे गये हैं।

भक्ति रहित विनय, स्नेह के बिना महिलाओं का रोना/रुदन और वैराग्य के बिना त्याग ये सब निषेध/प्रतिषिद्ध कहे गये हैं।

सुहडो सूरत्त-विणा महिला सोहग्ग-रहिय-परिसोहा ।
वेरग्ग-णाण-संजम-हीणा खवणा ण किं पि लब्भंते ॥72॥

अन्वयार्थ- [सूरत्त] शूरता **[विणा]** बिना **[सुहडो]** सुभट **[सोहग्ग-रहिय]** सौभाग्यरहित **[महिला]** स्त्री/नारी की **[परिसोहा]** शोभा/शृंगार तथा **[वेरग्ग-णाण-संजम]** वैराग्य, ज्ञान, संयम **[हीणा]** रहित **[खवणा]** क्षपणक/मुनि **[किं पि]** कुछ भी **[ण]** नहीं **[लब्भंते]** प्राप्त करते।

शूरता बिना सुभट, सौभाग्यरहित स्त्री/नारी की शोभा/शृंगार तथा वैराग्य, ज्ञान, संयम रहित क्षपणक/मुनि कुछ भी नहीं प्राप्त करते।

वत्थु-समग्गो मूढो लोही लब्भइ फलं जहा पच्छा ।
अण्णाणी जो विसयासत्तो लहइ तहा चेव ॥73॥

अन्वयार्थ- **[जहा]** जैसे **[वत्थु-समग्गो]** समस्त पदार्थों से युक्त **[मूढो]** अज्ञानी **[लोही]** लोभी **[फलं]** फल को **[पच्छा]** बाद में **[लब्भइ]** प्राप्त करता है **[तहा]** उसी प्रकार **[अण्णाणी]** अज्ञानी **[जो]** जो **[विसयासत्तो]** विषयों में आसक्त है **[चेव लहइ]** पीछे ही फल पाता है।

जैसे समस्त पदार्थों से युक्त अज्ञानी लोभी फल को बाद में प्राप्त करता है उसी प्रकार अज्ञानी जो विषयों में आसक्त है पीछे ही फल पाता है।

वत्थु-समग्गो णाणी सुपत्तदाणी फलं जहा लहइ ।
णाण-समग्गो विसय-परिचत्तो लहइ तहा चेव ॥74॥

अन्वयार्थ- **[जहा]** जैसे **[वत्थु-समग्गो]** समस्त पदार्थों की समग्रता/युक्तता सहित **[सुपत्तदाणी]** सुपात्रों को दान देने वाला **[णाणी]** ज्ञानी **[फलं]** फल को **[लहइ]** पाता है **[तहा चेव]** वैसे ही **[विसय-परिचत्तो]** विषयों का त्यागी **[णाण-समग्गो]** ज्ञान से युक्त ज्ञानी **[लहइ]** फल को पाता है।

जैसे समस्त पदार्थों की समग्रता/युक्तता सहित सुपात्रों को दान देने वाला ज्ञानी फल को पाता है वैसे ही विषयों का त्यागी ज्ञान से युक्त ज्ञानी फल को पाता है।

भू-महिला-कणयाइ-लोहाहि-विसहरं कहं पि हवे ।
सम्मत्तणाण-वेरग्गोसह-मंतेण जिणुद्दिट्ठं ॥75॥

अन्वयार्थ- [भू] पृथ्वी/भूमि **[महिला]** स्त्री **[कणयाइ]** स्वर्ण आदि के **[लोहाहि]** लोभरूपी सर्प और **[विसहरं]** विषधर सर्प को **[कहं पि हवे]** वह सर्प चाहे कैसा भी हो **[सम्मत्तणाण-वेरग्गोसह-मंतेण]** सम्यक्त्व-ज्ञान-वैराग्य रूपी औषधि और मंत्र से वश में किया जा सकता है। **[जिणुद्दिट्ठं]** ऐसा जिनेन्द्र देव ने कहा है।

पृथ्वी/भूमि, स्त्री, स्वर्ण आदि के लोभरूपी सर्प और विषधर सर्प को वह सर्प चाहे कैसा भी हो सम्यक्त्व-ज्ञान-वैराग्य रूपी औषधि और मंत्र से वश में किया जा सकता है। ऐसा जिनेन्द्र देव ने कहा है।

पुव्वं जो पंचेंदिय-तणु-मण-वचि-हत्थ-पाय-मुंडाउ ।
पच्छा सिर-मुंडाउ सिव-गइ-पहणायगो होइ ॥76॥

अन्वयार्थ- [जो] जो मनुष्य **[पुव्वं]** पहले **[पंचेंदिय]** पाँचों इन्द्रियों **[तणु-मण-वचि-हत्थ-पाय]** शरीर-मन-वचन-हाथ और पाँव को **[मुंडाउ]** मूँडता है/वश में करता है **[पच्छा]** पश्चात् **[सिर-मुंडाउ]** सिर मुँडाता है {केशों का लुंचन करता है} वह **[सिव-गइ]** मोक्ष गति/मोक्षमार्ग का **[पहणायगो]** प्रधान/नेता **[होइ]** होता है।

जो मनुष्य पहले पाँचों इन्द्रियों, शरीर, मन, वचन, हाथ और पाँव को मूँडता है/वश में करता है पश्चात् सिर मुँडाता है {केशों का लुंचन करता है} वह मोक्ष गति/मोक्षमार्ग का प्रधान/नेता होता है।

पतिभत्ति विहीण सदी भिच्चो य जिण-समय-भत्ति-हीण जइणो।
गुरु-भत्ति-हीण सिस्सो दुग्गइ-मग्गाणुलग्गओ णियमा ॥77॥

अन्वयार्थ- [पतिभत्ति विहीण] स्वामी भक्ति से रहित **[सदी]** सती **[य]** और **[भिच्चो]** भृत्य/नौकर **[जिण-समय-भत्ति हीण]** जिनेन्द्र देव-जिनागम/शास्त्र की भक्ति से रहित **[जइणो]** जैन; **[गुरु-भक्ति-हीण सिस्सो]** गुरु भक्ति से रहित शिष्य ये **[णियमा]** नियम से **[दुग्गइ]** दुर्गति के **[मग्गाणुलग्गओ]** मार्ग में संलग्न हैं।

स्वामी भक्ति से रहित सती और भृत्य/नौकर, जिनेन्द्र देव-जिनागम/शास्त्र की भक्ति से रहित जैन, गुरु भक्ति से रहित शिष्य ये नियम से दुर्गति के मार्ग में संलग्न हैं।

गुरु-भत्ति-विहीणाणं सिस्साणं सव्व-संग-विरदाणं ।
ऊसर-खेत्ते ववीय-सुबीय-समं जाण सव्वणुट्ठाणं ॥78॥

अन्वयार्थ- [सव्व-संग-विरदाणं] सब परिग्रहों से रहित; किन्तु **[गुरु-भत्ति-विहीणाणं]** गुरु भक्ति से विहीन **[सिस्साणं]** शिष्यों के **[सव्वणुट्ठाणं]** सभी अनुष्ठान-जप-तप व्रत आदि **[ऊसर-खेत्ते]** ऊसर भूमि में **[ववीय]** बोये गये **[सुबीय-समं]** उत्तम बीज के समान **[जाण]** जानो।

सब परिग्रहों से रहित; किन्तु गुरु भक्ति से विहीन शिष्यों के सभी अनुष्ठान-जप-तप व्रत आदि ऊसर भूमि में बोये गये उत्तम बीज के समान जानो।

रज्जं पहाण-हीणं पति-हीणं देस-गाम-रट्ठ-बलं ।
गुरु-भत्ति-हीण-सिस्साणुट्ठाणं णस्सदे सव्वं ॥79॥

अन्वयार्थ- [पहाण-हीणं] प्रधान/राजा से हीन **[रज्जं]** राज्य **[पति-हीणं]** स्वामी से विहीन **[देस-गाम-रट्ठ-बलं]** देश-ग्राम-राष्ट्र-सैन्यबल और **[गुरु-भत्ति-हीण]** गुरु भक्ति से विहीन **[सिस्सा]** शिष्य के **[सव्वं]** सभी **[अणुट्ठाणं]** अनुष्ठान **[णस्सदे]** नाश को प्राप्त हो जाते हैं।

प्रधान/राजा से हीन राज्य, स्वामी से विहीन देश-ग्राम-राष्ट्र-सैन्यबल और गुरु भक्ति से विहीन शिष्य के सभी अनुष्ठान नाश को प्राप्त हो जाते हैं।

सम्माण-विणा रुई भत्ति-विणा दाणं दया-विणा धम्मो ।
गुरु-भत्ति-विणा तव-गुण-चारित्तं णिप्फलं जाण ॥80॥

अन्वयार्थ- [सम्माण] सम्मान/आदर/सत्कार भाव के **[विणा]** बिना **[रुई]** रुचि/प्रेम **[भत्ति-विणा-दाणं]** भक्ति के बिना दान **[दया-विणा धम्मो]** दया के बिना धर्म तथा **[गुरु-भत्ति-विणा]** गुरु भक्ति के बिना **[तव-गुण-चारित्तं]** तप-गुण-चारित्र को **[णिप्फलं जाण]** निष्फल जानो।

सम्मान/आदर/सत्कार भाव के बिना रुचि/प्रेम, भक्ति के बिना दान, दया के बिना धर्म तथा गुरु भक्ति के बिना तप-गुण-चारित्र को निष्फल जानो।

हीणादाण-वियार-विहीणादो बाहिरक्ख-सोक्खं हि ।
किं तजियं किं भजियं किं मोक्खं ण दिट्ठं जिणुद्दिट्ठं ॥81॥

अन्वयार्थ- [जिणुद्दिट्ठं] जिनेन्द्र देव ने कहा {यह जीव} **[हीणादाण-वियार-विहीणादो]** निन्द्य और ग्राह्य के विचार से विहीन होने से **[हि]** निश्चय से **[बहिरक्ख-सोक्खं]** बाह्य इन्द्रिय सुख को ही सुख मानता है **[किं तजियं]** त्यागने योग्य क्या है? **[किं भजियं]** उपादेय क्या है? **[किं मोक्खं]** मोक्ष क्या है उसे **[ण दिट्ठं]** नहीं देखता/जानता।

जिनेन्द्र देव ने कहा यह जीव निन्द्य और ग्राह्य के विचार से विहीन होने से निश्चय से बाह्य इन्द्रिय सुख को ही सुख मानता है, त्यागने योग्य क्या है? उपादेय क्या है? मोक्ष क्या है उसे नहीं देखता/जानता।

कायकिलेसुववासं दुद्धर-तवयरण-कारणं जाण ।
तं णिय-सुद्धप्प-रुई परिपुण्णं चेदि कम्म-णिम्मूलं ॥82॥

अन्वयार्थ- [कायकिलेसुववास] कायक्लेश व उपवास **[दुद्धर-तवयरण-कारणं]** कठोर तपश्चरण के कारण **[जाण]** जानो **[तं]** वे ही काय-क्लेश व उपवास **[णिय-सुद्धप्प-रुई]** अपने शुद्ध आत्मा की रुचि होने पर **[परिपुण्णं]** समस्त **[कम्म-णिम्मूलं]** कर्मों के क्षय के कारण होते हैं **[चेदि]** ऐसा जानो।

कायक्लेश व उपवास कठोर तपश्चरण के कारण जानो, वे ही काय-क्लेश व उपवास अपने शुद्ध आत्मा की रुचि होने पर समस्त कर्मों के क्षय के कारण होते हैं ऐसा जानो।

कम्मु ण खवेइ जो परबम्हु ण जाणेइ सम्म-उम्मुक्को ।
अत्थु ण तत्थु ण जीवो लिंगं घेत्तूण किं करई ॥83॥

अन्वयार्थ- **[जो]** जो **[परबम्हु]** आत्मा परमात्मा को **[ण जाणेइ]** नहीं जानता है **[सम्म-उम्मुक्को]** वह सम्यक्त्व से रहित है **[कम्मु]** कर्मों का **[ण खवेइ]** क्षय नहीं करता **[जीवो]** ऐसा जीव **[अत्थु ण तत्थु ण]** न यहाँ का है और न वहाँ का **[लिंगं]** मात्र लिंग को **[घेत्तूण]** ग्रहण करके **[किं]** क्या **[करई]** करता है?

जो आत्मा परमात्मा को नहीं जानता है वह सम्यक्त्व से रहित है कर्मों का क्षय नहीं करता; ऐसा जीव 'न यहाँ का है और न वहाँ का' मात्र लिंग को ग्रहण करके क्या करता है?

अप्पाणं पि ण पेच्छइ ण मुणइ ण वि सद्दहइ ण भावेइ ।
बहु-दुक्ख-भार-मूलं लिंगं घेत्तूण किं करई ॥84॥

अन्वयार्थ- जो साधु **[अप्पाणं]** आत्मा को **[पि ण पेच्छइ]** नहीं देखता है **[ण मुणइ]** न उसका मनन करता है **[ण वि सद्दहइ]** न ही आत्मा की श्रद्धा करता है **[ण भावेइ]** न ही आत्मा की भावना ही करता है वह **[बहु-दुक्ख-भार-मूलं]** अत्यन्त/बहुल दुख के भार के कारण **[लिंगं घेत्तूण]** बाह्य भेष मात्र धारण करके **[किं करई]** क्या करता है?

जो साधु आत्मा को नहीं देखता है, न उसका मनन करता है, न ही आत्मा की श्रद्धा करता है, न ही आत्मा की भावना ही करता है वह अत्यन्त/बहुल दुख के भार के कारण बाह्य भेष मात्र धारण करके क्या करता है?

जाव ण जाणइ अप्पा अप्पाणं दुक्खमप्पणो ताव ।
तेण अणंत-सुहाणं अप्पाणं भावए जोई ॥85॥

अन्वयार्थ- **[जाव]** जब तक **[अप्पा]** आत्मा **[अप्पाणं]** आत्मा को **[ण]** नहीं **[जाणइ]** जानता **[ताव]** तब तक **[अप्पणो]** आत्मा को **[दुक्खं]** दुःख है **[तेण]** इसलिये **[जोई]** योगी **[अणंत-सुहाणं]** अनंत-सुख स्वभावी **[अप्पाणं]** आत्मा की **[भावए]** भावना करे।

जबतक आत्मा, आत्मा को नहीं जानता तब तक आत्मा को दुःख है इसलिये योगी अनंत-सुख स्वभावी आत्मा की भावना करे।

णिय-तच्चुवलद्धि-विणा सम्मत्तुवलद्धि णत्थि णियमेण ।
सम्मत्तुवलद्धि विणा णिव्वाणं णत्थि णियमेण ॥86॥

अन्वयार्थ- **[णिय-तच्चुवलद्धि-विणा]** निज आत्म-तत्त्व की उपलब्धि के बिना **[णियमेण]** नियम से **[सम्मत्तुवलद्धि]** सम्यक्त्व की प्राप्ति **[णत्थि]** नहीं होती **[सम्मत्तुवलद्धि विणा]** सम्यक्त्व की प्राप्ति के बिना **[णियमेण]** नियम से **[णिव्वाणं]** निर्वाण **[णत्थि]** नहीं है।

निज आत्म-तत्त्व की उपलब्धि के बिना नियम से सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं होती सम्यक्त्व की प्राप्ति के बिना नियम से निर्वाण नहीं है।

साल-विहीणो राओ दाण-दया-धम्म-रहिय गिहि-सोहा ।
णाण-विहीण तवो वि य जीव-विणा देह-सोहा णो ॥87॥

अन्वयार्थ- [साल-विहीणो राओ] दुर्ग के बिना राजा की **[सोहा]** शोभा **[दाण-दया-धम्म-रहिय]** दान, दया, धर्म से विहीन **[गिहि-सोहा]** गृहस्थ की शोभा **[य]** और **[जीव विणा]** जीव के बिना **[देह सोहा]** शरीर की शोभा **[णो]** नहीं है वैसे ही **[णाण विहीण]** ज्ञानविहीन **[तवो वि]** तप की भी शोभा नहीं है।

दुर्ग के बिना राजा की शोभा; दान, दया, धर्म से विहीन गृहस्थ की शोभा और जीव के बिना शरीर की शोभा नहीं है वैसे ही ज्ञानविहीन तप की भी शोभा नहीं है।

मक्खी सिलिम्मि पडियो मुवइ जहा तह परिग्गहे पडियो ।
लोही मूढो खवणो कायकिलेसेसु अण्णाणी ॥88॥

अन्वयार्थ- [जहा] जैसे **[मक्खी]** मक्खी **[सिलिम्मी]** श्लेष्मा में **[पडियो]** गिरी हुई **[मुवइ]** मर जाती है **[तह]** वैसे ही **[परिग्गहे पडियो]** परिग्रह में पड़ा हुआ **[लोही]** लोभी **[मूढो]** मूर्ख **[अण्णाणी]** अज्ञानी **[खवणो]** साधु **[कायकिलेसेसु]** काय-क्लेश में मरता है।

जैसे मक्खी श्लेष्मा में गिरी हुई मर जाती है वैसे ही परिग्रह में पड़ा हुआ लोभी मूर्ख अज्ञानी साधु काय-क्लेश में मरता है।

णाणब्भास-विहीणो सपरं तच्चं ण जाणए किं पिं ।
झाणं तस्स ण होइ हु ताव ण कम्मं खवेइ ण हु मोक्खं ॥89॥

अन्वयार्थ- [णाणब्भास-विहीणो] ज्ञानाभ्यास से रहित जीव **[सपरं तच्चं]** स्व-पर तत्त्व को **[किं पि]** कुछ भी **[ण]** नहीं

[जाणए] जानता **[तस्स]** उसके **[हु]** निश्चय से **[झाणं]** ध्यान **[ण होइ]** नहीं होता **[ताव]** तब तक **[कम्मं]** कर्मों का **[ण खवेइ]** क्षय नहीं करता **[ण हु मोक्खं]** न ही मोक्ष होता है।

ज्ञानाभ्यास से रहित जीव स्व-पर तत्त्व को कुछ भी नहीं जानता उसके निश्चय से ध्यान नहीं होता, तब तक कर्मों का क्षय नहीं करता न ही मोक्ष होता है।

अज्झयणमेव झाणं पंचेंदिय-णिग्गहं कसायं पि ।
तत्तो पंचमयाले पवयण-सारब्भासमेव कुज्जाओ ॥90॥

अन्वयार्थ- [अज्झयणमेव झाणं] अध्ययन ही ध्यान है **[पंचेंदिय-णिग्गहं]** पंचेन्द्रियों का निग्रह **[कसायं पि]** कषाय निग्रह/शमन भी होता है **[तत्तो]** इसलिये **[पंचमयाले]** वर्तमान पंचम काल में **[पवयण-सारब्भासमेव]** प्रवचन-सार जिनागम का अभ्यास **[कुज्जाओ]** करना चाहिये।

अध्ययन ही ध्यान है पंचेन्द्रियों का निग्रह कषाय निग्रह/शमन भी होता है, इसलिये वर्तमान पंचम काल में प्रवचन-सार जिनागम का अभ्यास करना चाहिये।

पावारंभ-णिवित्ती पुण्णारंभे पउत्ति-करणं पि ।
णाणं धम्मज्झाणं जिण-भणियं सव्व-जीवाणं ॥91॥

अन्वयार्थ- [सव्व-जीवाणं] सब जीवों के लिए **[पावारंभ-णिवित्ती]** पापारंभ से निवृत्ति और **[पुण्णारंभे]** पुण्य कार्यों में **[पउत्ति-करणं पि]** प्रवृत्ति कराने का हेतु भी **[णाणं]** ज्ञान ही है

अतः ज्ञान को ही **[धम्मज्झाणं]** धर्म्यध्यान **[जिण-भणियं]** जिनेन्द्र देव ने कहा है।

सब जीवों के लिए पापारंभ से निवृत्ति और पुण्य कार्यों में प्रवृत्ति कराने का हेतु भी ज्ञान ही है अतः ज्ञान को ही धर्म्यध्यान जिनेन्द्र देव ने कहा है।

सुद-णाणब्भासं जो ण कुणइ सम्मं ण होइ तवयरणं ।
कुव्वंतो मूढ-मई संसार-सुहाणुरत्तो सो ॥92॥

अन्वयार्थ- **[जो]** जो जीव **[सुद-णाणब्भासं]** श्रुतज्ञान का अभ्यास **[ण]** नहीं **[कुणइ]** करता है उसके **[तवयरणं सम्मं]** तपश्चरण सम्यक् **[ण होइ]** नहीं होता है **[सो]** वह **[मूढ-मई]** अज्ञानी **[कुव्वंतो]** {तपश्चरण} करता हुआ **[संसार-सुहाणुरत्तो]** संसार-सुख में अनुरक्त है।

जो जीव श्रुतज्ञान का अभ्यास नहीं करता है उसके तपश्चरण सम्यक् नहीं होता है, वह अज्ञानी {तपश्चरण} करता हुआ संसार-सुख में अनुरक्त है।

तच्च-वियारण-सीलो मोक्ख-पहाराहण-सहाव-जुदो ।
अणवरयं धम्म-कहा-पसंगओ होइ मुणिराओ ॥93॥

अन्वयार्थ- **[तच्च]** तत्त्व की **[वियारण-सीलो]** विचारणा स्वभाव वाले **[मोक्ख-पह]** मोक्षपथ की **[आराहण]** आराधना **[सहाव-जुदो]** स्वभाव से युक्त **[अणवरयं]** निरन्तर **[धम्म-कहा पसंगओ]** धर्मकथा के संबंध सहित **[मुणिराओ]** मुनिराज **[होइ]** होते हैं।

तत्त्व की विचारणा स्वभाव वाले मोक्षपथ की आराधना स्वभाव से युक्त निरन्तर धर्मकथा के संबंध सहित मुनिराज होते हैं।

विकहाइ-विप्पमुक्को आहाकम्माइ-विरहियो णाणी ।
धम्मुद्देसण-कुसलो अणुपेहा भावणा-जुदो जोई ॥94॥

अन्वयार्थ- [जोई] योगी/मुनिराज **[विकहाइ-विप्पमुक्को]** विकथा आदि से पूर्णरूपेण मुक्त होता है **[आहाकम्माइ विरहियो]** अधः कर्म आदि से रहित होता है; **[णाणी]** सम्यग्ज्ञानी होता है **[धम्मुद्देसण-कुसलो]** धर्मोपदेश देने में कुशल होता है; और **[अणुपेहा भावणा-जुदो]** बारह अनुप्रेक्षा के चिन्तन में/मनन में अनवरत लगा रहता है।

योगी/मुनिराज विकथा आदि से पूर्णरूपेण मुक्त होता है, अधः कर्म आदि से रहित होता है, सम्यग्ज्ञानी होता है, धर्मोपदेश देने में कुशल होता है और बारह अनुप्रेक्षा के चिन्तन में/मनन में अनवरत लगा रहता है।

णिंदा-वंचण-दूरो परिसह-उवसग्ग-दुक्ख-सहमाणो ।
सुह-झाणज्झयण-रदो गय-संगो होइ मुणिराओ ॥95॥

अन्वयार्थ- [मुणिराओ] मुनिराज **[णिंदा-वंचण-दूरो]** परनिन्दा और वंचना से सदा दूर रहते हैं। **[परिसह-उवसग्ग-दुक्ख-सहमाणो]** परीषह, उपसर्ग तथा दुखों को सहन करते हैं। **[सुह-झाणज्झयण-रदो]** शुभ ध्यान, अध्ययन में रत रहते हैं **[गद-संगो]** बाह्य-अन्तः परिग्रह से रहित **[होइ]** होते हैं।

मुनिराज परनिन्दा और वंचना से सदा दूर रहते हैं। परीषह, उपसर्ग तथा दुखों को सहन करते हैं। शुभ ध्यान, अध्ययन में रत रहते हैं; बाह्य-अन्तः परिग्रह से रहित होते हैं।

अवियप्पो णिद्दंदो णिम्मोहो णिक्कलंकओ णियदो ।
णिम्मल-सहाव-जुत्तो जोई सो होइ मुणिराओ ॥96॥

अन्वयार्थ- जो **[जोई]** योगी **[अवियप्पो]** विकल्प रहित **[णिद्दंदो]** निर्द्वन्द्व **[णिम्मोहो]** निर्मोह **[णिक्कलंकओ]** निष्कलंक **[णियदो]** नियत **[णिम्मल]** निर्मल **[सहाव-जुत्तो]** स्वभाव से युक्त है **[सो]** वे **[मुणिराओ]** मुनिराज **[होइ]** होते हैं।

जो योगी विकल्प रहित निर्द्वन्द्व, निर्मोह, निष्कलंक, नियत, निर्मल स्वभाव से युक्त है वे मुनिराज होते हैं।

तिव्वं कायकिलेसं कुव्वंतो मिच्छ-भाव-संजुत्तो ।
सव्वण्हूवएसो सो णिव्वाण-सुहं ण गच्छेइ ॥97॥

अन्वयार्थ- जो **[तिव्वं कायकिलेसं]** तीव्र काय-क्लेश **[कुव्वंतो]** करता हुआ भी **[मिच्छ-भाव-संजुत्तो]** मिथ्यात्व भाव से युक्त है, **[सव्वण्हूवएसो]** सर्वज्ञ के उपदेश में **[सो]** वह **[णिव्वाण-सुहं]** निर्वाण-सुख को **[ण]** नहीं **[गच्छेइ]** पाता है।

जो तीव्र काय-क्लेश करता हुआ भी मिथ्यात्व भाव से युक्त है, सर्वज्ञ के उपदेश में वह निर्वाण-सुख को नहीं पाता है।

रायाइ-मल-जुदाणं णियप्प-रूवं ण दिस्सए किं पि ।
समलादरिसे रूवं ण दिस्सए जह तहा णेयं ॥98॥

अन्वयार्थ- [रायाइ-मल-जुदाणं] राग आदि मल से युक्त जीवों को **[णियप्प-रूवं]** अपना आत्म स्वरूप **[किं]** कुछ **[पि]** भी **[ण]** नहीं **[दिस्सए]** दिखाई देता है **[जह]** जैसे **[समलादरिसे]** मलीन दर्पण में **[रूवं]** रूप **[ण दिस्सए]** नहीं दिखाई देता। **[तहा]** वैसे ही **[णेयं]** जानना चाहिये।

राग आदि मल से युक्त जीवों को अपना आत्म स्वरूप कुछ भी नहीं दिखाई देता है जैसे मलीन दर्पण में रूप नहीं दिखाई देता। वैसे ही जानना चाहिये।

दंडत्तय-सल्लत्तय-मंडियमाणो असूयगो साहू ।
भंडण-जायण-सीलो हिंडइ सो दीह-संसारे ॥99॥

अन्वयार्थ- जो **[साहू]** साधु **[दंडत्तय]** तीन दंड- मन, वचन काय को वश में नहीं करता **[सल्लत्तय]** तीन शल्य- माया, मिथ्या, निदान से युक्त **[मंडियमाणो]** अभिमानी **[असूयगो]** ईर्ष्यालु और **[भंडण-जायण-सीलो]** कलह करने वाला, याचना करने वाला है **[सो]** वह **[दीह-संसारे]** दीर्घसंसार में **[हिंडइ]** परिभ्रमण करता है।

जो साधु तीन दंड- मन, वचन, काय को वश में नहीं करता; तीन शल्य- माया, मिथ्या, निदान से युक्त, अभिमानी, ईर्ष्यालु और कलह करने वाला, याचना करने वाला है वह दीर्घसंसार में परिभ्रमण करता है।

देहादिसु अणुरत्ता विसयासत्ता कसाय-संजुत्ता ।
अप्प-सहावे सुत्ता ते साहू सम्म-परिचत्ता ॥100॥

अन्वयार्थ- जो **[देहादिसु अणुरत्ता]** शरीर आदि में अनुरक्त **[विसयासत्ता]** विषयों में आसक्त **[कसाय-संजुत्ता]** कषाय से युक्त **[अप्प-सहावे सुत्ता]** आत्म-स्वभाव में सोये हुए/प्रमादी हैं **[ते साहू]** वे साधु **[सम्म-परिचत्ता]** सम्यक्त्व से रहित हैं।

जो शरीर आदि में अनुरक्त, विषयों में आसक्त, कषाय से युक्त आत्म-स्वभाव में सोये हुए/प्रमादी हैं वे साधु सम्यक्त्व से रहित हैं।

आरंभे धण-धण्णे उवयरणे कंखिया तहासूया ।
वय-गुण-सील-विहीणा कसाय-कलहप्पिया मुहरा ॥101॥
संघ-विरोह-कुसीला सच्छंदा रहिद-गुरुकुला मूढा ।
रायाइ-सेवया ते जिण-धम्म-विराहिया साहू ॥102॥

अन्वयार्थ- जो **[साहू]** साधु **[आरंभे]** आरंभ में **[धण-धण्णे]** धन-धान्य में **[उवयरणे]** उपकरणों में **[कंखिया]** आकांक्षा रखते हैं। **[तहा]** तथा **[असूया]** ईर्ष्यालु हैं **[वय-गुण-सील-विहीणा]** व्रत-गुण-शील से रहित हैं **[कसाय-कलहप्पिया]** कषाय व कलहप्रिय हैं **[मुहरा]** वाचाल हैं **[संघ-विरोह-कुसीला]** संघ का विरोध करते हैं, कुशील हैं **[सच्छंदा]** स्वच्छंद हैं **[रहिद-गुरुकुला]** गुरुकुल से रहित हैं **[मूढा]** अज्ञानी हैं **[रायाइ-सेवया]** राजा आदि की सेवा करते हैं **[ते]** वे **[जिण-धम्म-विराहिया]** जिनधर्म के विराधक साधु हैं।

जो साधु आरंभ में, धन-धान्य में, उपकरणों में आकांक्षा रखते हैं तथा ईर्ष्यालु हैं, व्रत-गुण-शील से रहित हैं, कषाय व कलहप्रिय हैं, वाचाल हैं, संघ का विरोध करते हैं, कुशील हैं, स्वच्छंद हैं, गुरुकुल

से रहित हैं, अज्ञानी हैं, राजा आदि की सेवा करते हैं वे जिनधर्म के विराधक साधु हैं।

जोइस-वेज्जा-मंतोवजीवणं वायवस्स ववहारं ।
धण-धण्ण-पडिग्गहणं समणाणं दूसणं होइ ॥103॥

अन्वयार्थ- [जोइस-वेज्जा-मंतोवजीवणं] ज्योतिष, वैद्यक, मंत्रों द्वारा उपजीविका/आजीविका चलाना **[वायवस्स ववहारं]** वात-विकार का व्यापार- {भूत-प्रेत आदि का झाड़-फूंक करने का व्यापार} **[धण-धण्ण-पडिग्गहणं]** धन-धान्य आदि का ग्रहण करना ये सब कार्य **[समणाणं]** श्रमणों के लिए **[दूसणं]** दोष **[होइ]** होते हैं।

ज्योतिष, वैद्यक, मंत्रों द्वारा उपजीविका/आजीविका चलाना, वात-विकार का व्यापार {भूत-प्रेत आदि का झाड़-फूंक करने का व्यापार}, धन-धान्य आदि का ग्रहण करना ये सब कार्य श्रमणों के लिए दोष होते हैं।

जे पावारंभ-रया कसाय-जुत्ता परिग्गहासत्ता ।
लोय-ववहार-पउरा ते साहू सम्म-उम्मुक्का ॥104॥

अन्वयार्थ- [जे] जो साधु **[पावारंभ-रया]** पाप और आरंभ में रत हैं **[कसाय-जुत्ता]** कषाय युक्त हैं **[परिग्गह-आसत्ता]** परिग्रह में आसक्त हैं **[लोय-ववहार-पउरा]** लोक-व्यवहार में पटु/प्रमग्न हैं **[ते साहू]** वे साधु **[सम्म-उम्मुक्का]** सम्यग्दर्शन से उन्मुक्त/रहित हैं।

जो साधु पाप और आरंभ में रत हैं, कषाय युक्त हैं, परिग्रह में आसक्त हैं, लोक-व्यवहार में पटु/प्रमग्न हैं वे साधु सम्यग्दर्शन से उन्मुक्त/रहित हैं।

ण सहंति इयर-दप्पं थुवंति अप्पाणमप्प-माहप्पं ।
जिब्भ-णिमित्तं कुणंति कज्जं ते साहू सम्म-उम्मुक्का ॥105॥

अन्वयार्थ- जो **[साहू]** साधु **[इयर-दप्पं]** दूसरों के बड़प्पन को **[ण सहंति]** नहीं सहते हैं **[अप्पाणं]** अपनी और **[अप्प-माहप्पं]** अपने माहात्म्य की **[थुवंति]** प्रशंसा करते हैं। **[जिब्भ-णिमित्तं]** जिव्हा इन्द्रिय के निमित्त **[कज्जं]** कार्य **[कुणंति]** करते हैं **[ते]** वे **[साहू]** साधु **[सम्म-उम्मुक्का]** सम्यक्त्व से विहीन/रहित जानो।

जो साधु दूसरों के बड़प्पन को नहीं सहते हैं, अपनी और अपने माहात्म्य की प्रशंसा करते हैं, जिव्हा इन्द्रिय के निमित्त कार्य करते हैं वे साधु सम्यक्त्व से विहीन/रहित जानो।

चम्मट्ठि-मंस-लव-लुद्धो सुणहो गज्जए मुणिं दिट्ठा ।
जह तह पाविट्ठो सो धम्मिट्ठं दिट्ठा सगीयट्ठो ॥106॥

अन्वयार्थ- **[जह]** जैसे **[चम्मट्ठि]** चर्म, अस्थि **[मंस-लव-लुद्धो]** मांस के टुकड़े का लोभी **[सुणहो]** कुत्ता **[मुणिं]** मुनि को **[दिट्ठा]** देखकर **[गज्जए]** भौंकता है **[तह]** वैसे ही **[पाविट्ठो]** जो पापी जीव है **[सो]** वह **[सगीयट्ठो]** स्वार्थवश **[धम्मिट्ठ]** धर्मात्मा को **[दिट्ठा]** देखकर भौंकता/कलह करता है।

जैसे चर्म, अस्थि, मांस के टुकड़े का लोभी कुत्ता मुनि को देखकर भौंकता है वैसे ही जो पापी जीव है वह स्वार्थवश धर्मात्मा को देखकर भौंकता/कलह करता है।

भुंजेइ जहा-लाहं लहेइ जइ णाण-संजम-णिमित्तं ।
झाणज्झयण-णिमित्तं अणयारो मोक्ख-मग्ग-रओ ॥107॥

अन्वयार्थ- जो **[जइ]** योगी **[जहा-लाहं]** यथालाभ जो प्राप्त हो वह **[भुंजेइ]** भोजन करते है वे **[णाण-संजम-णिमित्तं]** ज्ञान और संयम के निमित्त **[झाणज्झयण-णिमित्तं]** ध्यान-अध्ययन के निमित्त **[लहेइ]** ग्रहण करते हैं वे **[अणयारो]** अनगार/साधु **[मोक्ख-मग्ग-रओ]** मोक्षमार्ग में रत हैं।

जो योगी यथालाभ जो प्राप्त हो वह भोजन करते है वे ज्ञान और संयम के निमित्त ध्यान-अध्ययन के निमित्त ग्रहण करते हैं वे अनगार/साधु मोक्षमार्ग में रत हैं।

उयरग्गि-समण-मक्ख-मक्खण-गोयरि-सब्भ-पूरण-भमरं ।
णाऊण तप्पयारे णिच्चेवं भुंजए भिक्खू ॥108॥

अन्वयार्थ- [उयरग्गि-समण-मक्ख-मक्खण-गोयरि-सब्भपूरण-भमरं] उदराग्नि शमन अक्षम्रक्षण, गोचरी, श्वभ्रपूरण और भ्रामरी वृत्ति और **[तप्पयारे]** उसके प्रकारों को **[णाऊण]** जानकर **[भिक्खू]** साधु **[णिच्चेवं]** नित्य ही **[भुंजए]** आहार ग्रहण करें।

उदराग्नि शमन, अक्षम्रक्षण, गोचरी, श्वभ्रपूरण और भ्रामरी वृत्ति और उसके प्रकारों को जानकर साधु नित्य ही आहार ग्रहण करें।

रस-रुहिर-मंस-मेदट्ठि-सुकिल-मल-मुत्त-पूय-किमि-बहुलं ।
दुग्गंधमसुइ-चम्ममयमणिच्चमचेदणं पडणं ॥109॥
बहु-दुक्ख-भायणं कम्म-कारणं भिण्णमप्पणो देहं ।
तं देहं धम्माणुट्ठाण-कारणं चेदि पोसए भिक्खू ॥110॥

अन्वयार्थ- **[देहं]** शरीर **[रस]** रस **[रुहिर]** रुधिर **[मंस-मेदट्ठि-सुकिल-मल-मूत्त-पूय-किमि-बहुलं]** मांस, मेदा, अस्थि, शुक्र, मल, मूत्र, पूय/पीव, कृमि/कीड़ों से भरा हुआ **[दुग्गंध]** दुर्गंधयुक्त **[असुइ]** अपवित्र **[चम्ममयं]** चर्ममय **[अणिच्चं]** अनित्य **[अचेदणं]** अचेतन **[पडणं]** नाशवान **[बहु-दुक्ख-भायणं]** अनेक प्रकार के दुःखों का भाजन **[कम्म-कारणं]** कर्मों के आस्रव का कारण **[अप्पणो भिण्णं]** आत्मा से भिन्न है **[तं देहं]** उस शरीर को **[धम्माणुट्ठान-कारणं]** धर्मानुष्ठान का कारण है **[चेदि]** ऐसा जानकर **[भिक्खू]** भिक्षु/साधु **[पोसए]** पोषण करते हैं।

शरीर रस, रुधिर, मांस, मेदा, अस्थि, शुक्र, मल, मूत्र, पूय/पीव, कृमि/कीड़ों से भरा हुआ दुर्गंधयुक्त, अपवित्र, चर्ममय, अनित्य, अचेतन, नाशवान, अनेक प्रकार के दुःखों का भाजन, कर्मों के आस्रव का कारण, आत्मा से भिन्न है; उस शरीर को धर्मानुष्ठान का कारण है ऐसा जानकर भिक्षु/साधु पोषण करते हैं।

संजम-तव-झाणज्झयण-विण्णाणए गिण्हए पडिग्गहणं ।
वज्जइ गिण्हइ भिक्खू ण सक्कदे वज्जिदुं दुक्खं ॥111॥

अन्वयार्थ- **[भिक्खू]** भिक्षु **[संजम-तव-झाणज्झयण-विण्णाणए]** संयम, तप, ध्यान, अध्ययन व विज्ञान के लिए

[पडिग्गहणं] प्रतिग्रहण/आहार **[गिण्हए]** ग्रहण करता है-वह यदि **[वज्जइ]** इन कारणों को छोड़कर **[गिण्हइ]** आहार ग्रहण करता है तो **[दुक्खं वज्जिदुं]** संसार के दु:खों को छोड़ने के लिए **[सक्कदे ण]** समर्थ नहीं हो सकता है।

भिक्षु संयम, तप, ध्यान, अध्ययन व विज्ञान के लिए प्रतिग्रहण/आहार ग्रहण करता है- वह यदि इन कारणों को छोड़कर आहार ग्रहण करता है तो संसार के दु:खों को छोड़ने के लिए समर्थ नहीं हो सकता है।

कोहेण य कलहेण य जायण-सीलेण संकिलेसेण ।
रुद्देण य रोसेण य भुंजइ किं विंतरो भिक्खू ॥112॥

अन्वयार्थ- जो साधु **[कोहेण य]** क्रोध से **[कलहेण य]** कलह से **[जायण-सीलेण]** याचना करके **[संकिलेसेण]** संक्लेश से **[रुद्देण य]** रौद्र परिणामों से तथा **[रोसेण य]** रोस/रुष्ट होकर **[भुंजइ]** आहार ग्रहण करता है वह **[किं भिक्खू]** क्या भिक्षु साधु है? वह तो **[विंतरो]** व्यन्तर है।

जो साधु क्रोध से, कलह से, याचना करके, संक्लेश से, रौद्र परिणामों से तथा रोस/रुष्ट होकर आहार ग्रहण करता है वह क्या भिक्षु साधु है? वह तो व्यन्तर है।

दिव्वुत्तरण-सरिच्छं जाणिच्चाहो धरेइ जइ सुद्धो ।
तत्तायस-पिंड-समं भिक्खू तुह पाणि-गद-पिंडं ॥113॥

अन्वयार्थ- [अहो] हे **[भिक्खू]** भिक्षुक/मुने **[जइ]** यदि **[तुह पाणि-गद-पिंड]** तुम्हारे हाथों में गया/हाथ पर रखा पिंड **[तत्तायस-पिंड-समं सुद्धो]** तपाये हुए लोहे के पिंड के समान शुद्ध है- तो उसे **[दिव्वुत्तरण-सरिच्छं]** दिव्य नौका के समान **[जाणिच्चा]** जानकर **[धरेइ]** ग्रहण कर।

हे भिक्षुक/मुने यदि तुम्हारे हाथों में गया/हाथ पर रखा पिंड तपाये हुए लोहे के पिंड के समान शुद्ध है तो उसे दिव्य नौका के समान जानकर ग्रहण कर।

अविरद-देस-महव्वय आगम-रुइणं वियार-तच्चण्हं ।
पत्तंतरं सहस्सं णिद्दिट्ठं जिणवरिंदेहिं ॥114॥

अन्वयार्थ- [अविरद-देस-महव्वय] अविरतसम्यग्दृष्टि, देशव्रती, महाव्रती **[आगम-रुइणं]** जिनागम में रुचि रखने वाले **[वियार-तच्चण्हं]** तत्त्वों के विचारकों की अपेक्षा **[जिणवरिंदेहिं]** जिनेन्द्र देव ने **[पत्तंतरं सहस्सं]** हजारों प्रकार के पात्र **[णिद्दिट्ठं]** कहे हैं।

अविरतसम्यग्दृष्टि, देशव्रती, महाव्रती, जिनागम में रुचि रखने वाले, तत्त्वों के विचारकों की अपेक्षा जिनेन्द्र देव ने हजारों प्रकार के पात्र कहे हैं।

उवसम-णिरीह-झाणज्झयणाइ-महागुणा जहादिट्ठा ।
जेसिं ते मुणि-णाहा उत्तम-पत्ता तहा भणिया ॥115॥

अन्वयार्थ- [जेसिं] जिन मुनियों में **[उवसम-णिरीह-झाणज्झयणाइ]** उपशम, निस्पृहता, ध्यान, अध्ययन आदि **[महागुणा]** महान् गुण **[जहादिट्ठा]** जैसे देखे गये **[ते]** वे **[मुणि-णाहा]** मुनिराज **[तहा]** वैसे ही **[उत्तम-पत्ता]** उत्तम पात्र **[भणिया]** कहे गये हैं।

जिन मुनियों में उपशम, निस्पृहता, ध्यान, अध्ययन आदि महान् गुण जैसे देखे गये वे मुनिराज वैसे ही उत्तम पात्र कहे गये हैं।

ण वि जाणइ जिण-सिद्ध-सरूवं तिविहेण तह णियप्पाणं ।
जो तिव्वं कुणइ तवं सो हिंडइ दीह-संसारे ॥116॥

अन्वयार्थ- [जो] जो **[जिण-सिद्ध-सरूवं]** जिन/अरहंत देव, सिद्ध परमेष्ठी के स्वरूप को **[तह]** वैसे ही/तथा **[णियप्पाणं]** अपनी आत्मा को **[वि]** भी **[तिविहेण]** बहिरात्मा, अन्तरात्मा व परमात्मा रूप तीन भेद से **[ण]** नहीं **[जाणइ]** जानता है; और **[तिव्वं]** तीव्र घोर **[तवं]** तप **[कुणइ]** करता है **[सो]** वह **[दीह संसारे]** दीर्घ संसार में **[हिंडइ]** परिभ्रमण करता है।

जो जिन/अरहंत देव, सिद्ध परमेष्ठी के स्वरूप को वैसे ही/तथा अपनी आत्मा को भी बहिरात्मा, अन्तरात्मा व परमात्मा रूप तीन भेद से नहीं जानता है; और तीव्र घोर तप करता है वह दीर्घ संसार में परिभ्रमण करता है।

दंसण-सुद्धो धम्मज्झाण-रदो संग-वज्जिदो णिसल्लो ।
पत्त-विसेसो भणियो सो गुण-हीणो दु विवरीदो ॥117॥

सम्माइ-गुण-विसेसं पत्त-विसेसं जिणेहि णिद्दिट्ठं ।
तं जाणिऊण देइ सुदाणं जो सो हु मोक्ख-रओ ॥118॥ [युग्मम्]

अन्वयार्थ- [दंसण-सुद्धो] सम्यग्दर्शन से शुद्ध **[धम्मज्झाण-रदो]** धर्मध्यान में रत **[संग-वज्जिदो]** परिग्रह से रहित **[णिसल्लो]** शल्य रहित **[पत्त-विसेसो]** विशेषपात्र **[भणियो]** कहे गये हैं **[गुण-हीणो]** जो इन गुणों से रहित हैं **[सो दु]** वे तो **[विवरीदो]** विपरीत/अपात्र हैं।

[सम्माइ-गुण-विसेसं] जिसमें सम्यक्त्वादि विशेष गुण हैं-वह **[जिणेहि]** जिनेन्द्र देव ने **[पत्त-विसेसं]** विशेष पात्र **[णिद्दिट्ठं]** कहा है **[जो]** जो जीव **[तं]** उस पात्रविशेष को **[जाणिऊण]** जानकर **[सुदाणं]** उत्तम दान, निर्दोष दान को **[देइ]** देता है, **[सो हु]** निश्चय ही वह **[मोक्ख-रओ]** मोक्षमार्ग में रत है।

सम्यग्दर्शन से शुद्ध, धर्मध्यान में रत, परिग्रह से रहित, शल्य रहित विशेषपात्र कहे गये हैं जो इन गुणों से रहित हैं वे तो विपरीत/अपात्र हैं।

जिसमें सम्यक्त्वादि विशेष गुण हैं- वह जिनेन्द्र देव ने विशेष पात्र कहा है, जो जीव उस पात्रविशेष को जानकर उत्तम दान, निर्दोष दान को देता है, निश्चय ही वह मोक्षमार्ग में रत है।

णिच्छय-ववहार-सरूवं जो रयणत्तयं ण जाणइ सो ।
जं कीरइ तं मिच्छा-रूवं सव्वं जिणुद्दिट्ठं ॥119॥

अन्वयार्थ- [जो] जो **[णिच्छय-ववहार-सरूवं]** निश्चय और व्यवहार स्वरूप वाले **[रयणत्तयं]** रत्नत्रय को **[ण]** नहीं **[जाणइ]**

जानता है **[सो]** वह **[जं]** जो **[कीरइ]** करता है **[तं सव्वं]** वह सब **[मिच्छा-रूवं]** मिथ्यारूप है **[जिणुद्दिट्ठं]** ऐसा जिनेन्द्र देव ने कहा है।

जो निश्चय और व्यवहार स्वरूप वाले रत्नत्रय को नहीं जानता है, वह जो करता है वह सब मिथ्यारूप है ऐसा जिनेन्द्र देव ने कहा है।

किं जाणिऊण सयलं तच्चं किच्चा तवं च किं बहुलं ।
सम्म-विसोहि-विहीणं णाण-तवं जाण भव-बीयं ॥120॥

अन्वयार्थ- [सयलं तच्चं जाणिऊण किं] सम्पूर्ण तत्त्वों को जानकर क्या लाभ है **[च]** और **[बहुलं तवं किच्चा किं]** बहुत प्रकार के तप करने से भी क्या लाभ है **[सम्म-विसोही-विहीणं]** सम्यक्त्व की विशुद्धि से रहित **[णाण-तवं भव-बीयं जाण]** ज्ञान-तप को संसार का बीज जानो।

सम्पूर्ण तत्त्वों को जानकर क्या लाभ है और बहुत प्रकार के तप करने से भी क्या लाभ है? सम्यक्त्व की विशुद्धि से रहित ज्ञान-तप को संसार का बीज जानो।

वय-गुण-सील-परीसह-जयं च चरियं तवं छडावसयं ।
झाणज्झयणं सव्वं सम्म-विणा जाण भव-बीयं ॥121॥

अन्वयार्थ- [वय-गुण-सील-परीसह-जयं] व्रत, गुण, शील, परीषह-जय **[चरियं]** चारित्र **[तवं]** तप **[छडावसयं]** षट् आवश्यक **[च]** और **[झाणज्झयणं]** ध्यान-अध्ययन **[सव्वं]** सब **[सम्म-विणा]** सम्यक्त्व के बिना **[भव-बीयं]** संसार के बीज **[जाण]** जानो।

व्रत, गुण, शील, परीषह-जय, चारित्र, तप, षट् आवश्यक और ध्यान-अध्ययन सब सम्यक्त्व के बिना संसार के बीज जानो।

खाई-पूया-लाहं सक्काराइं किमिच्छसे जोई ।
इच्छसि जइ परलोयं तेहिं किं तुज्झ परलोयं ॥122॥

अन्वयार्थ- [जोई] हे योगी! **[जइ परलोयं इच्छसि]** यदि परलोक की इच्छा करता है तो **[खाई-पूया-लाहं]** ख्याति-पूजा-लाभ **[सक्काराइं]** सत्कार आदि की **[किमिच्छसे]** इच्छा क्यों करता है? **[किं]** क्या **[तेहिं]** उनसे **[तुज्झ]** तुझे **[परलोयं]** परलोक मिलेगा {परलोक अच्छा मिलेगा?}

हे योगी! यदि परलोक की इच्छा करता है तो ख्याति, पूजा, लाभ, सत्कार आदि की इच्छा क्यों करता है? क्या उनसे तुझे परलोक मिलेगा {परलोक अच्छा मिलेगा?}

कम्माद-विहाव-सहाव-गुणं जो भाविऊण भावेण ।
णिय-सुद्धप्पा रुच्चइ तस्स य णियमेण होइ णिव्वाणं ॥123॥

अन्वयार्थ- [जो] जो मुनि **[कम्माद-विहाव-सहाव-गुणं]** कर्म-जनित विभाव व कर्मों के क्षय से प्राप्त स्वभाव गुणों को **[भावेण]** भावपूर्वक **[भाविऊण]** भाकर, मनन चिंतन कर **[णिय-सुद्धप्पा]** अपने शुद्धात्मा में **[रुच्चइ]** रुचि करता है **[तस्स य]** उसका ही **[णियमेण]** नियम से **[णिव्वाणं]** निर्वाण **[होइ]** होता है।

जो मुनि कर्म-जनित विभाव व कर्मों के क्षय से प्राप्त स्वभाव गुणों को भावपूर्वक भाकर, मनन चिंतन कर अपने शुद्धात्मा में रुचि

करता है उसका ही नियम से निर्वाण होता है।

मूलुत्तरुत्तरुत्तर-दव्वादो भाव-कम्मदो मुक्को ।
आसव-बंधण-संवर-णिज्जर जाणेह किं बहुणा ॥124॥

अन्वयार्थ- [मूलुत्तरुत्तरुत्तर-दव्वादो] मूल प्रकृतियाँ, उत्तर प्रकृतियाँ और उत्तरोत्तर प्रकृति रूप द्रव्यकर्म से **[भाव-कम्मदो]** भाव कर्म से **[मुक्को]** मुक्त जीव **[आसव-बंधण-संवर-णिज्जर जाणेह]** आस्रव-बंध-संवर-निर्जरा तत्त्वों को जानता है **[बहुणा किं]** बहुत कहने से क्या लाभ है?

मूल प्रकृतियाँ, उत्तर प्रकृतियाँ और उत्तरोत्तर प्रकृति रूप द्रव्यकर्म से, भाव कर्म से मुक्त जीव आस्रव-बंध-संवर-निर्जरा तत्त्वों को जानता है बहुत कहने से क्या लाभ है?

विसय-विरत्तो मुंचइ विसयासत्तो ण मुंचए जोई ।
बहिरंतर-परमप्पा-भेयं जाणेह किं बहुणा ॥125॥

अन्वयार्थ- [विसय-विरत्तो जोई] विषयों से विरक्त योगी **[मुंचइ]** कर्मों से छूटता है **[विसयासत्तो]** विषयों में आसक्त **[ण]** नहीं **[मुंचए]** छूटता है। **[बहिरंतर-परमप्पा-भेयं]** बहिरात्मा-अन्तरात्मा व परमात्मा के भेदों को **[जाणेह]** जानो **[किं बहुणा]** बहुत कहने से क्या लाभ?

विषयों से विरक्त योगी कर्मों से छूटता है, विषयों में आसक्त नहीं छूटता है। बहिरात्मा-अन्तरात्मा व परमात्मा के भेदों को जानो बहुत कहने से क्या लाभ?

णिय-अप्प-णाण-झाणज्झयण-सुहामिय-रसायणं पाणं ।
मोत्तूणऽक्खाण सुहं जो भुंजइ सो हु बहिरप्पा ॥126॥

अन्वयार्थ- [जो] जो **[णिय-अप्प-णाण-झाणज्झयण-सुहामिय-रसायणं पाणं]** अपनी आत्मा के ज्ञान, ध्यान, अध्ययन और सुखरूपी अमृत को **[मोत्तूण]** छोड़कर **[अक्खाण सुहं]** इन्द्रिय सुखों को **[भुंजइ]** भोगता है **[सो हु]** वह निश्चय से **[बहिरप्पा]** बहिरात्मा है।

जो अपनी आत्मा के ज्ञान, ध्यान, अध्ययन और सुखरूपी अमृत को छोड़कर इन्द्रिय सुखों को भोगता है वह निश्चय से बहिरात्मा है।

किंपाय-फलं पक्कं विस-मिस्सिद-मोदमिव चारु-सुहं ।
जिब्भ-सुहं दिट्ठि-पियं जह तह जाणऽक्ख-सोक्खं पि ॥127॥

अन्वयार्थ- [जह] जैसे **[पक्कं किंपाय-फलं]** पका हुआ किंपाक फल **[विस-मिस्सिद-मोदमिव-चारु-सोहं]** विषमिश्रित मोदक/ लड्डू, इन्द्रायण फल देखने में सुन्दर होते हैं, **[जिब्भ-सुहं]** जिव्हा को सुख देते है **[दिट्ठि-पियं]** देखने में भी प्रिय लगते हैं **[तह]** वैसे ही **[अक्ख सोक्खं पि]** इन्द्रिय सुखों को भी **[जाण]** जानो।

जैसे पका हुआ किंपाक फल, विषमिश्रित मोदक/ लड्डू, इन्द्रायण फल देखने में सुन्दर होते हैं, जिव्हा को सुख देते है देखने में भी प्रिय लगते हैं वैसे ही इन्द्रिय सुखों को भी जानो।

देह-कलत्तं पुत्तं मित्ताइं विहाव-चेदणा-रूवं ।
अप्प-सरूवं भावइ सो चेव हवेइ बहिरप्पा ॥128॥

अन्वयार्थ- जो जीव **[देह-कलत्तं-पुत्तं]** शरीर, स्त्री, पुत्र **[मित्ताइं]** मित्र आदि तथा **[विहाव-चेदणा-रूवं]** विभाव चेतना रूप को **[अप्प-सरूवं]** आत्मा का स्वरूप **[भावइ]** भाता है **[सो चेव]** वह ही **[बहिरप्पा]** बहिरात्मा **[हवेइ]** होता है।

जो जीव शरीर, स्त्री, पुत्र, मित्र आदि तथा विभाव चेतना रूप को आत्मा का स्वरूप भाता है वह ही बहिरात्मा होता है।

इंदिय-विसय-सुहाइसु मूढ-मई रमइ ण लहइ तच्चं ।
बहु-दुक्खमिदि ण चिंतइ सो चेव हवेइ बहिरप्पा ॥129॥

अन्वयार्थ- [मूढ-मई] अज्ञानी जीव **[इंदिय-विसय-सुहाइसु रमइ]** पंचेन्द्रिय-विषयों के सुखादि में रम जाता है **[बहु-दुक्खमिदि ण चिंतइ]** ये इन्द्रिय सुख बहुत दुःखदायी हैं ऐसा चिंतन नहीं करता **[सो]** वह **[तच्चं ण लहइ]** तत्त्व को प्राप्त नहीं करता और **[सो चेव]** वह ही **[बहिरप्पा हवइ]** बहिरात्मा होता है।

अज्ञानी जीव पंचेन्द्रिय-विषयों के सुखादि में रम जाता है, ये इन्द्रिय सुख बहुत दुःखदायी हैं ऐसा चिंतन नहीं करता, वह तत्त्व को प्राप्त नहीं करता और वह ही बहिरात्मा होता है।

जं जं अक्खाण सुहं तं तं तिव्वं करेइ बहु-दुक्खं ।
अप्पाणमिदि ण चिंतइ सो चेव हवेइ बहिरप्पा ॥130॥

अन्वयार्थ- [जं जं] जितने/जो जो **[अक्खाण सुहं]** इन्द्रिय-सुख हैं **[तं तं]** वे-वे सब **[अप्पाणं]** आत्मा को **[तिव्वं बहु-दुक्खं]** तीव्र, बहुत प्रकार के दुःखों को **[करेइ]** देते हैं **[इदि]** इस प्रकार जो **[ण**

चिंतइ] चिंतन नहीं करता **[सो चेव]** वह ही **[बहिरप्पा]** बहिरात्मा **[हवेइ]** होता है।

जितने/जो-जो इन्द्रिय-सुख हैं वे-वे सब आत्मा को तीव्र, बहुत प्रकार के दुःखों को देते हैं इस प्रकार जो चिंतन नहीं करता वह ही बहिरात्मा होता है।

जेसिं अमेज्झ-मज्झे उप्पण्णाणं हवेइ तत्थ रुई ।
तह बहिरप्पाणं बहिरिंदिय-विसएसु होइ मई ॥131॥

अन्वयार्थ- [जेसिं] जैसे **[अमेज्झ-मज्झे]** विष्टा में **[उप्पण्णाणं]** उत्पन्न जीवों की/कीड़ों की **[रुई]** रुचि **[तत्थ हवेइ]** उसी विष्टा में होती है **[तह]** उसी प्रकार **[बहिरप्पाणं]** बहिरात्मा जीवों की **[मई]** बुद्धि **[बहिरिंदिय-विसएसु]** बाह्य इंद्रिय विषयों में **[होइ]** होती है।

जैसे विष्टा में उत्पन्न जीवों की/कीड़ों की रुचि उसी विष्टा में होती है उसी प्रकार बहिरात्मा जीवों की बुद्धि बाह्य इंद्रिय विषयों में होती है।

पूय-सूय-रसाणाणं खारामिय-भक्ख-भक्ख णाणं पि।
मणु जाइ जहा मज्झे, बहिरप्पाणं तहा णेयं ॥132॥

अन्वयार्थ- [जहा] जैसे **[मणु जाइ]** मनुष्य जाति **[पूय-सूय-रसाणाणं]** अपवित्र और खाने योग्य रसों में **[खारामिय]** क्षार और अमृत में **[भक्ख-भक्ख पि]** भक्ष्य और अभक्ष्य **[मज्झे पि]** मध्य भी **[णाणं]** विवेक नहीं करती **[तहा]** उसी प्रकार **[बहिरप्पाणं]** बहिरात्मा को **[णेयं]** जानना चाहिये।

जैसे मनुष्य जाति अपवित्र और खाने योग्य रसों में, क्षार और अमृत में, भक्ष्य और अभक्ष्य मध्य भी विवेक नहीं करती उसी प्रकार बहिरात्मा को जानना चाहिये।

सिविणे वि ण भुंजइ विसयाइं देहाइ-भिण्ण-भाव-मई ।
भुंजइ णियप्प-रूवो सिव-सुह-रत्तो दु मज्झिमप्पो सो ॥133॥

अन्वयार्थ- [देहाइ-भिण्ण-भाव-मई] शरीर आदि से भिन्न आत्मा में बुद्धि है जिसकी जो **[सिविणे वि ण विसयाइं भुंजइ]** स्वप्न में भी विषयादि को नहीं भोगता है। **[णियप्प-रूवो]** आत्मा के निज स्वरूप को **[भुंजइ]** भोगता है/अनुभव करता है **[दु]** और **[सिव-सुह-रत्तो]** शिवसुख में रत है **[सो]** वह **[मज्झिमप्पो]** मध्यम-आत्मा/अन्तरात्मा है।

शरीर आदि से भिन्न आत्मा में बुद्धि है जिसकी जो स्वप्न में भी विषयादि को नहीं भोगता है। आत्मा के निज स्वरूप को भोगता है/अनुभव करता है और शिवसुख में रत है वह मध्यम-आत्मा/अन्तरात्मा है।

मल-मुत्त-घडव्व चिरं वासिय दुव्वासणं ण मुंचेइ ।
पक्खालिय-सम्मत्त-जलो य णाणमियेण पुण्णो वि ॥134॥

अन्वयार्थ- यह जीव **[सम्मत्त-जलो]** सम्यक्त्व रूपी जल से **[पक्खालिय]** प्रक्षालित करने पर **[य]** और **[णाणमियेण]** ज्ञानामृत से **[पुण्णो वि]** पूर्ण होने पर भी **[चिरं वासिय]** चिरकाल से दुर्गंधित/दुर्वासित **[मल-मुत्त-घडव्व]** मल-मूत्र से भरे घड़े के समान **[दुव्वासणं]** दुर्वासना को **[ण मुंचेइ]** नहीं छोड़ता है।

यह जीव सम्यक्त्व रूपी जल से प्रक्षालित करने पर और ज्ञानामृत से पूर्ण होने पर भी चिरकाल से दुर्गंधित/दुर्वासित मल-मूत्र से भरे घड़े के समान दुर्वासना को नहीं छोड़ता है।

सम्माइट्ठी णाणी अक्खाण सुहं कहं पि अणुहवइ ।
केणावि ण परिहारइ वाहि-विणासणट्ठ-भेसज्जं ॥135॥

अन्वयार्थ- [सम्माइट्ठी णाणी] सम्यग्दृष्टि ज्ञानी **[कहं पि]** किसी प्रकार/अनिच्छापूर्वक/अनासक्ति से **[अक्खाण सुहं अणुहवइ]** इन्द्रियों के सुख का अनुभव करता है/भोग करता है; क्योंकि **[वाहि-विणासणट्ठं]** रोग को दूर करने के लिए **[भेसज्जं]** औषधि **[केणावि]** किसी के द्वारा **[ण परिहारइ]** छोड़ी नहीं जाती।

सम्यग्दृष्टि ज्ञानी किसी प्रकार/अनिच्छापूर्वक/अनासक्ति से इन्द्रियों के सुख का अनुभव करता है/भोग करता है; क्योंकि रोग को दूर करने के लिए औषधि किसी के द्वारा छोड़ी नहीं जाती।

किं बहुणा हो तजि बहिरप्प-सरूवाणि सयल-भावाणि ।
भजि मज्झिम-परमप्पा वत्थु-सरूवाणि भावाणि ॥136॥

अन्वयार्थ- [हो] अहो/हे भव्य! **[किं बहुणा]** बहुत कहने से क्या लाभ? **[बहिरप्प-सरूवाणि]** बहिरात्म स्वरूप **[सयल-भावाणि तजि]** सकल भावों को छोड़ तथा **[मज्झिम-परमप्पा]** मध्यमात्मा परमात्मा के **[वत्थु-सरूवाणि]** वस्तु स्वरूप **[भावाणि]** भावों को **[भजि]** भज।

अहो/हे भव्य! बहुत कहने से क्या लाभ? बहिरात्म स्वरूप सकल

भावों को छोड़ तथा मध्यमात्मा परमात्मा के वस्तु स्वरूप भावों को भज।

चउगइ-संसार-गमण-कारण-भूयाणि दुक्ख-हेऊणि ।
ताणि हवे बहिरप्पा वत्थु-सरूवाणि भावाणि ॥137॥

अन्वयार्थ- **[बहिरप्पा]** बहिरात्मा जीव के **[वत्थु-सरूवाणि भावाणि]** वस्तुस्वरूप सम्बन्धी जो भाव हैं **[ताणि]** वे सब **[चउगइ-संसार-गमण-कारण-भूयाणि]** चतुर्गति रूप संसार परिभ्रमण के कारण हैं; और **[दुक्ख-हेऊणी]** दुःख के कारण **[हवे]** होते हैं।

बहिरात्मा जीव के वस्तुस्वरूप सम्बन्धी जो भाव हैं वे सब चतुर्गति रूप संसार परिभ्रमण के कारण हैं; और दुःख के कारण होते हैं।

मोक्ख-गइ-गमण-कारण-भूयाणि पसत्थ-पुण्ण-हेऊणि ।
ताणि हवे दुविहप्पा वत्थु-सरूवाणि भावाणि ॥138॥

अन्वयार्थ- **[दुविहप्पा]** दो प्रकार की आत्मा अन्तरात्मा व परमात्मा के **[वत्थु-सरूवाणि भावाणि]** वस्तु-स्वरूप सम्बंधी जो भाव हैं **[ताणि]** वे सब **[मोक्ख-गइ-गमण-कारण-भूयाणि]** मोक्षगति में ले जाने के कारणभूत और **[पसत्थ-पुण्ण-हेऊणि]** प्रशस्त पुण्य के कारण **[हवे]** होते हैं।

दो प्रकार की आत्मा अन्तरात्मा व परमात्मा के वस्तु-स्वरूप सम्बंधी जो भाव हैं वे सब मोक्षगति में ले जाने के कारणभूत और प्रशस्त पुण्य के कारण होते हैं।

दव्व-गुण-पज्जएहिं जाणइ पर-सग-समयादि-विभेयं ।
अप्पाणं जाणइ सो सिव-गइ-पह-णायगो होइ ॥139॥

अन्वयार्थ- जो **[पर-सग-समयादि-विभेयं]** स्व-समय और पर समय आदि के भेद को **[दव्व-गुण-पज्जएहिं]** द्रव्य-गुण-पर्यायों के द्वारा **[जाणइ]** जानता है **[सो]** वह **[अप्पाणं]** अपनी आत्मा को **[जाणइ]** जानता है; वही **[सिव-गइ-पह-णायगो]** मोक्षगति के मार्ग का नायक/मुक्ति-पथ नायक **[होइ]** होता है।

जो स्व-समय और पर समय आदि के भेद को द्रव्य-गुण-पर्यायों के द्वारा जानता है वह अपनी आत्मा को जानता है; वही मोक्षगति के मार्ग का नायक/मुक्ति-पथ नायक होता है।

बहिरंतरप्पभेयं पर-समयं भण्णए जिणिंदेहिं ।
परमप्पा सग-समयं तब्भेयं जाण गुणट्ठाणे ॥140॥

अन्वयार्थ- [जिणिंदेहिं] जिनेन्द्र भगवान् ने **[बहिरंतरप्पभेयं]** बहिरात्मा और अन्तरात्मा इन भेदों को **[पर-समयं]** पर समय **[भण्णए]** कहा है **[परमप्पा सग-समयं]** परमात्मा स्वसमय है **[तब्भेयं]** उनके भेद **[गुणट्ठाणे]** गुणस्थानों की अपेक्षा **[जाण]** जानो।

जिनेन्द्र भगवान् ने बहिरात्मा और अन्तरात्मा इन भेदों को पर समय कहा है, परमात्मा स्वसमय है उनके भेद गुणस्थानों की अपेक्षा जानो।

मिस्सो त्ति बहिरप्पा तरतमया तुरियं अंतरप्प-जहण्णो ।
संतो त्ति मज्झिमंतर खीणुत्तम परम-जिण-सिद्धा ॥141॥

अन्वयार्थ- [मिस्सो त्ति] प्रथम गुणस्थान से मिश्र गुणस्थान तक के जीव **[बहिरप्पा]** बहिरात्मा है। **[तरमतया]** विशुद्धि के तारतम्य की अपेक्षा से **[तुरियं अंतरप्प-जहण्णो]** चौथे गुणस्थानवर्ती जघन्य अन्तरात्मा है **[संतो त्ति]** पंचम गुणस्थान से उपशान्त कषाय गुणस्थान पर्यन्त **[मज्झिमंतर]** मध्यम अन्तरात्मा हैं तथा **[खीणुत्तम]** क्षीणमोह गुणास्थानवर्ती उत्तम अन्तरात्मा हैं और **[परम-जिण-सिद्धा]** १३वें १४वें गुणस्थानवर्ती अरहंत-सयोग-केवली तथा अयोगकेवली और सिद्ध परमेष्ठी परमात्मा हैं।

प्रथम गुणस्थान से मिश्र गुणस्थान तक के जीव बहिरात्मा है। विशुद्धि के तारतम्य की अपेक्षा से चौथे गुणस्थानवर्ती जघन्य अन्तरात्मा है, पंचम गुणस्थान से उपशान्त कषाय गुणस्थान पर्यन्त मध्यम अन्तरात्मा हैं तथा क्षीणमोह गुणास्थानवर्ती उत्तम अन्तरात्मा हैं और १३वें, १४वें गुणस्थानवर्ती अरहंत- सयोग-केवली तथा अयोगकेवली और सिद्ध परमेष्ठी परमात्मा हैं।

मूढत्तय-सल्लत्तय-दोसत्तय-दंड-गारवत्तयेहिं ।
परिमुक्को जोई सो सिव-गइ-पह-णायगो होइ ॥142॥

अन्वयार्थ- जो **[जोई]** योगी **[मूढत्तय]** तीन मूढ़ता **[सल्लत्तय]** तीन शल्य **[दोसत्तय]** तीन दोष **[दंड-गारवत्तयेहिं]** तीन दंड, तीन गारव **[परिमुक्को]** परिमुक्त/रहित होता है **[सो]** वह **[सिव-गइ-पह-णायगो]** शिव-गति के पथ/मार्ग का नेता **[होइ]** होता है।

जो योगी तीन मूढ़ता, तीन शल्य, तीन दोष, तीन दंड, तीन गारव परिमुक्त/रहित होता है वह शिव-गति के पथ/मार्ग का नेता होता है।

रयणत्तय-करणत्तय-जोगत्तय-गुत्तित्तय-विसुद्धेहिं ।
संजुत्तो जोई सो सिव-गइ-पह-णायगो होइ ॥143॥

अन्वयार्थ- जो **[जोई]** योगी **[रयणत्तय]** तीन रत्न/रत्नत्रय **[करणत्तय]** तीन करण **[जोगत्तय]** तीन योग **[गुत्तित्तय]** तीन गुप्तियों की **[विसुद्धेहिं]** विशुद्धि से **[संजुत्तो]** संयुक्त है **[सो]** वह **[सिव-गइ-पह-णायगो]** शिवगति पथनायक/मोक्षगति के मार्ग का नायक **[होइ]** होता है।

जो योगी तीन रत्न/रत्नत्रय, तीन करण, तीन योग, तीन गुप्तियों की विशुद्धि से संयुक्त है वह शिवगति पथनायक/मोक्षगति के मार्ग का नायक होता है।

जिण-लिंग-धरो जोई विराय-सम्मत्त-संजुदो णाणी ।
परमोवेक्खाइरियो सिव-गइ-पह-णायगो होइ ॥144॥

अन्वयार्थ- [जिण-लिंग-धरो] जिनलिंग का धारक **[विराय-सम्मत्त-संजुदो]** वैराग्य और सम्यक्त्व से संयुक्त **[णाणी]** ज्ञानी और **[परमोवेक्खाइरियो]** परम-उपेक्षा भाव का धारक **[जोई]** योगी **[सिव-गइ-पह-णायगो]** शिवगति का पथ नायक **[होइ]** होता है।

जिन लिंग का धारक, वैराग्य और सम्यक्त्व से संयुक्त, ज्ञानी और परम-उपेक्षा भाव का धारक योगी शिवगति का पथ नायक होता है।

बहिरब्भंतर-गंथ-विमुक्को सुद्धोवजोय-संजुत्तो ।
मूलुत्तर-गुण-पुण्णो सिव-गइ-पह-णायगो होइ ॥145॥

अन्वयार्थ- [बहिरब्भंतर] बाह्य और अभ्यंतर **[गंथ-विमुक्को]** परिग्रह से मुक्त **[सुद्धोवजोय-संजुत्तो]** शुद्धोपयोग से संयुक्त **[मूलुत्तर-गुण-पुण्णो]** मूल व उत्तर गुणों से पूर्ण योगी **[सिव-गइ-पह-णायगो]** शिवगति के पथनायक/मुक्ति मार्ग के नेता **[होइ]** होते हैं।

बाह्य और अभ्यंतर परिग्रह से मुक्त, शुद्धोपयोग से संयुक्त, मूल व उत्तर गुणों से पूर्ण योगी शिवगति के पथनायक/मुक्ति मार्ग के नेता होते हैं।

जं जाइ-जरा-मरणं दुह-दुट्ठ-विसाहि-विस-विणासयरं ।
सिव-सुह-लाहं सम्मं संभावइ सुणइ साहए साहू ॥146॥

अन्वयार्थ- [जं] जो **[सम्मं]** सम्यक्त्व **[जाइ-जरा-मरणं]** जन्म, जरा, मृत्यु **[दुह-दुट्ठ-विसाहि-विस-विणासयरं]** दुःखरूपी दुष्ट विषधर सर्प के विष का विनाश करने वाला है **[सिव-सुह-लाहं]** शिव-सुख का लाभ करने वाला है **[साहू]** साधु **[संभावइ]** उसी सम्यक्त्व की भावना करता है **[सुणइ]** उसी के बारे में सुनता है **[साहए]** उसी की साधना करता है।

जो सम्यक्त्व जन्म, जरा, मृत्यु दुःखरूपी दुष्ट विषधर सर्प के विष का विनाश करने वाला है, शिव-सुख का लाभ करने वाला है साधु उसी सम्यक्त्व की भावना करता है, उसी के बारे में सुनता है, उसी की साधना करता है।

किं बहुणा हो देविंदाहिंद-णरिंद-गणहरिंदेहिं ।
पुज्जा परमप्पा जे तं जाण पहाव-सम्म-गुणं ॥147॥

अन्वयार्थ- [हो] हे भव्य **[किं बहुणा]** बहुत कहने से क्या लाभ **[जे]** जो **[परमप्पा]** परमात्मा **[देविंदाहिंद-णरिंद-गणहरिंदेहिं]** देवेन्द्र-नागेन्द्र-नरेन्द्र-गणधरेन्द्रों से **[पुज्जा]** पूजित हैं **[तं]** उसे **[सम्म-गुणं]** सम्यक्त्व गुण का **[पहाव]** प्रभाव **[जाण]** जानो।

हे भव्य! बहुत कहने से क्या लाभ जो परमात्मा देवेन्द्र-नागेन्द्र-नरेन्द्र-गणधरेन्द्रों से पूजित हैं उसे सम्यक्त्व गुण का प्रभाव जानो।

उवसमइ सम्मत्तं मिच्छत्त-बलेण पेल्लए तस्स ।
परिवट्टंति कसाया अवसप्पिणि-काल-दोसेण ॥148॥

अन्वयार्थ- [अवसप्पिणी-कालदोसेण] अवसर्पिणी के काल-दोष से **[मिच्छत्त-बलेण]** मिथ्यात्व के उदय से **[तस्स]** उन जीव का **[उवसमइ सम्मत्तं]** उपशम सम्यक्त्व **[पेल्लए]** नष्ट हो जाता है और **[कसाया परिवट्टंति]** कषाय पुनः उत्पन्न हो जाती है।

अवसर्पिणी के काल-दोष से, मिथ्यात्व के उदय से उन जीव का उपशम सम्यक्त्व नष्ट हो जाता है और कषाय पुनः उत्पन्न हो जाती है।

गुण-वय-तव-सम-पडिमा-दाणं जल-गालणं अणत्थमियं ।
दंसण-णाण-चरित्तं किरिया तेवण्ण सावया भणिया ॥149॥

अन्वयार्थ- [गुण] गुण **[वय]** व्रत **[तव]** तप **[सम]** समता **[पडिमा]** प्रतिमा **[दाणं]** दान **[जल-गालणं]** जल छानना

[अणत्थमियं] रात्रि में सूर्यास्त के बाद भोजन नहीं करना **[दंसण-णाण-चरित्तं]** सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र **[सावया]** श्रावक की **[तेवण्ण]** ५३ **[किरिया]** क्रियाएं **[भणिया]** कही गई हैं।

गुण, व्रत, तप, समता, प्रतिमा, दान, जल छानना, रात्रि में सूर्यास्त के बाद भोजन नहीं करना, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र श्रावक की ५३ क्रियाएं कही गई हैं।

णाणेण झाण-सिद्धि झाणादो सव्व-कम्म-णिज्जरणं ।
णिज्जरण-फलं मोक्खं णाणब्भासं तदो कुज्जा ॥150॥

अन्वयार्थ- [णाणेण] ज्ञान से **[झाण-सिद्धि]** ध्यान की सिद्धि होती है **[झाणादो सव्व-कम्म-णिज्जरणं]** ध्यान से सब कर्मों की निर्जरा होती है **[णिज्जरण-फलं मोक्खं]** निर्जरा का फल मोक्ष है। **[तदो]** इसलिए **[णाणब्भासं]** ज्ञानाभ्यास **[कुज्जा]** करना चाहिये।

ज्ञान से ध्यान की सिद्धि होती है, ध्यान से सब कर्मों की निर्जरा होती है, निर्जरा का फल मोक्ष है। इसलिए ज्ञानाभ्यास करना चाहिये।

कुसलस्स तवो णिवुणस्स संजमो समपरस्स वेरग्गो ।
सुद-भावणेण तत्तिय तम्हा सुद-भावणं कुणह ॥151॥

अन्वयार्थ- [कुसलस्स] कुशल व्यक्ति के **[तवो]** तप होता है **[णिवुणस्स संजमो]** निपुण व्यक्ति के संयम होता है **[समपरस्स]** समता भावी के **[वेरग्गो]** वैराग्य होता है; और **[सुद-भावेणण]** श्रुत की भावना से **[तत्तिय]** वे तीनों होते हैं **[तम्हा]** इसलिये **[सुद-भावणं]** श्रुत की भावना **[कुणह]** करो।

कुशल व्यक्ति के तप होता है, निपुण व्यक्ति के संयम होता है, समता भावी के वैराग्य होता है; और श्रुत की भावना से वे तीनों होते हैं इसलिये श्रुत की भावना करो।

कालमणंतं जीवो मिच्छत्त-सरूवेण पंच-संसारे ।
हिंडदि ण लहइ सम्मं संसारब्भमण-पारंभो ॥152॥

अन्वयार्थ- [जीवो] जीव **[मिच्छत्त-सरूवेण]** मिथ्यात्व-स्वरूप होने से **[अणंतं कालं]** अनंतकाल से **[पंच-संसारे]** पंच परावर्तन रूप संसार में **[हिंडदि]** भ्रमण कर रहा है; किन्तु **[सम्मं]** सम्यक्त्व **[ण लहइ]** प्राप्त नहीं हुआ **[संसारब्भमण-पारंभो]** संसार परिभ्रमण बना हुआ है।

जीव मिथ्यात्व-स्वरूप होने से अनंतकाल से पंच परावर्तन रूप संसार में भ्रमण कर रहा है; किन्तु सम्यक्त्व प्राप्त नहीं हुआ, संसार परिभ्रमण बना हुआ है।

सम्मद्दंसण-सुद्धं जाव दु लभदे हि ताव सुही ।
सम्मद्दंसण-सुद्धं जाव ण लभदे हि ताव दुही ॥153॥

अन्वयार्थ- [जाव दु] जब **[सुद्धं सम्मद्दंसण]** शुद्ध सम्यग्दर्शन **[लभदे]** प्राप्त कर लेता है **[ताव हि]** निश्चय से तब ही **[सुही]** सुखी होता है **[जाव]** जब तक **[सुद्धं]** शुद्ध **[सम्मद्दंसण]** सम्यग्दर्शन **[लभदे]** प्राप्त **[ण]** नहीं कर लेता है **[ताव हि]** तभी तक **[दुही]** दुखी रहता है।

जब शुद्ध सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लेता है निश्चय से तब ही सुखी होता है, जब तक शुद्ध सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं करता है तभी तक दुखी रहता है।

किं बहुणा वयणेण दु सव्वं दुक्खेव सम्मत्त-विणा ।
सम्मत्तेण वि जुत्तं सव्वं सोक्खेव जाण खु ॥154॥

अन्वयार्थ- [किं बहुणा वयणेण दु] बहुत कहने से/अधिक कथन से क्या लाभ? **[सम्मत्त-विणा]** सम्यक्त्व बिना **[सव्वं दुक्खेव]** सब दुख रूप ही है। और **[सम्मत्तेण वि जुत्तं]** सम्यक्त्व सहित **[सव्वं सोक्खेव]** सब सुख रूप ही है-यह **[खु]** निश्चय **[जाण]** जानो।

बहुत कहने से/अधिक कथन से क्या लाभ? सम्यक्त्व बिना सब दुख रूप ही है और सम्यक्त्व सहित सब सुख रूप ही है- यह निश्चय जानो।

भुत्तो अयोगुलो-सइयो तत्तो अग्गि-सिखोवमो यज्जे ।
भुंजइ जे दुस्सीला रत्तपिंडं असंजतो ॥154॥[2]

अन्वयार्थ- जैसे **[अग्गि-सिखोवमो]** अग्नि शिखा के समान **[तत्तो]** तप्तायमान **[अयोगुलो-सइयो]** लोहे का गोला **[यज्जे]** पानी में डालने पर **[भुत्तो]** भक्षण करता है/खींचता है वैसे ही **[जे]** जो **[दुस्सीला]** शील रहित जीव **[रत्तपिंडं भुंजइ]** रात्रि में भोजन को खाते हैं वे **[असंजतो]** असंयमी हैं।

[2] अन्य प्रति में उपलब्ध गाथा 154

जैसे अग्नि शिखा के समान तप्तायमान लोहे का गोला पानी में डालने पर भक्षण करता है/खींचता है वैसे ही जो शील रहित जीव रात्रि में भोजन को खाते हैं वे असंयमी हैं।

णिक्खेव-णय-पमाणं सद्दालंकार-छंद-लहियाणं ।
णाडय-पुराण-कम्मं सम्म-विणा दीह-संसारं ॥155॥

अन्वयार्थ- [णिक्खेव-णय-पमाणं] निक्षेप-नय-प्रमाण **[सद्दालंकार-छंद णाडय-पुराण]** शब्दालंकार, छन्द, नाटकशास्त्र, पुराण आदि का ज्ञान **[लहियाणं]** प्राप्त कर **[कम्मं]** बाह्य क्रियाएँ की, किन्तु ये सब ज्ञान व क्रिया **[सम्म-विणा]** सम्यक्त्व के बिना **[दीह-संसारं]** दीर्घ संसार के कारण होते हैं।

निक्षेप-नय-प्रमाण, शब्दालंकार, छन्द, नाटकशास्त्र, पुराण आदि का ज्ञान प्राप्त कर बाह्य क्रियाएँ की, किन्तु ये सब ज्ञान व क्रिया सम्यक्त्व के बिना दीर्घ संसार के कारण होते हैं।

वसदि-पडिमोवयरणे गण-गच्छे समय-संघ-जाइ-कुले ।
सिस्स-पडिसिस्स-छत्ते सुय-जादे कप्पडे पुत्थे ॥156॥
पिच्छे संथरणे इच्छासु लोहेण कुणइ ममयारं ।
जावच्च अट्टरुद्दं ताव ण मुंचेदि ण हु सोक्खं ॥157॥

अन्वयार्थ- [वसदि-पडिमोवयरणे] वसति, प्रतिमोपकरण **[गण-गच्छे]** गण में, गच्छ में **[समय-संघ-जाइ-कुले]** शास्त्र, संघ, जाति कुल में **[सिस्स-पडिसिस्स-छत्ते]** शिष्य-प्रतिशिष्य में **[सुय-जादे]** पुत्र-पौत्र में **[कप्पडे]** कपड़ों या वस्त्रों में **[पुत्थे]** पुस्तक में **[पिच्छे]**

पिच्छी में **[संथरणे]** संस्तर **[इच्छासु]** इच्छाओं में **[लोहेण]** लोभ से **[कुणइ ममयारं]** ममकार करता है और **[जावच्च]** जब तक **[अट्टरुद्दं]** आर्त्त-रौद्रध्यान करता है **[ताव]** तब-तक **[ण मुंचेदि]** मुक्त नहीं होता **[ण हु सोक्खं]** न उसे सुख मिलता है।

वसति, प्रतिमोपकरण, गण में, गच्छ में, शास्त्र, संघ, जाति, कुल में, शिष्य-प्रतिशिष्य में, पुत्र-पौत्र में, कपड़ों या वस्त्रों में, पुस्तक में, पिच्छी में, संस्तर इच्छाओं में लोभ से ममकार करता है और जब तक आर्त्त-रौद्रध्यान करता है तब-तक मुक्त नहीं होता, न उसे सुख मिलता है।

रयणत्तयमेव गणं गच्छं गमणस्स मोक्ख-मग्गस्स ।
संघो गुण-संघादो समओ खलु णिम्मलो अप्पा ॥158॥

अन्वयार्थ- [मोक्ख-मग्गस्स] मोक्ष मार्ग में **[गमणस्स]** गमन करने वाले साधु का **[रयणत्तयमेव]** रत्नत्रय ही **[गणं गच्छं]** गण-गच्छ है **[गुण-संघादो]** गुणों के समूह से **[संघो]** संघ है **[खलु]** निश्चय से **[णिम्मलो अप्पा]** निर्मल आत्मा **[समओ]** समय है।

मोक्ष मार्ग में गमन करने वाले साधु का रत्नत्रय ही गण-गच्छ है, गुणों के समूह से संघ है, निश्चय से निर्मल आत्मा समय है।

मिहिरो महंधयारं मरुदो मेहं महावणं दाहो ।
वज्जो गिरिं जहा विणसिज्जइ सम्मं तहा कम्मं ॥159॥

अन्वयार्थ- [जहा] जैसे **[मिहिरो]** सूर्य **[महंधयारं]** महा-अन्धकार को **[मरुदो]** वायु **[मेहं]** मेघ को **[दाहो]** अग्नि **[महावणं]** महावन

को **[वज्जो]** वज्र **[गिरिं]** पर्वत को **[विणसज्जइ]** विनष्ट कर देता है **[तहा]** वैसे ही **[सम्मं]** सम्यग्दर्शन **[कम्मं]** कर्म को क्षय करता है।

जैसे सूर्य महा-अन्धकार को, वायु मेघ को, अग्नि महावन को, वज्र पर्वत को विनष्ट कर देता है वैसे ही सम्यग्दर्शन कर्म को क्षय करता है।

मिच्छंधयार-रहियं हिय-मज्झे सम्म-रयण-दीव-कलावं ।
जो पज्जलइ स दीसइ सम्मं लोयत्तयं जिणुद्दिट्ठं ॥160॥

अन्वयार्थ- [मिच्छंधयार-रहियं] मिथ्यात्वरूपी अंधकार से रहित हुआ **[जो]** जो भव्यात्मा **[हिय-मज्झे]** हृदय के मध्य में **[सम्म-रयण-दीव-कलावं]** सम्यक्त्व रत्न रूपी दीपक को **[पज्जलइ]** प्रज्वलित करता है **[स]** वह **[सम्मं]** समीचीन प्रकार से **[लोयत्तयं]** तीन लोक को **[दीसइ]** देखता है ऐसा **[जिणुद्दिट्ठं]** जिनेन्द्र देव ने कहा है।

मिथ्यात्वरूपी अंधकार से रहित हुआ जो भव्यात्मा हृदय के मध्य में सम्यक्त्व रत्न रूपी दीपक को प्रज्वलित करता है वह समीचीन प्रकार से तीन लोक को देखता है ऐसा जिनेन्द्र देव ने कहा है।

पवयण-सारब्भासं परमप्पज्झाण-कारणं जाण ।
कम्मक्खवण-णिमित्तं कम्मक्खवणे हि मोक्ख-सुहं ॥161॥

अन्वयार्थ- [पवयण-सारब्भासं] जिनेन्द्र कथित वचनों का/श्रुत का अभ्यास **[परमप्पज्झाण-कारणं जाण]** परमात्मा के ध्यान का कारण जानो। परमात्मा का ध्यान **[कम्मक्खवण-णिमित्तं]** कर्मक्षय का निमित्त है **[कम्मक्खवणे हि]** कर्मों का क्षय होने पर

निश्चय ही **[मोक्ख-सुहं]** मोक्ष सुख की प्राप्ति होती है।

जिनेन्द्र कथित वचनों का/श्रुत का अभ्यास परमात्मा के ध्यान का कारण जानो। परमात्मा का ध्यान कर्मक्षय का निमित्त है, कर्मों का क्षय होने पर निश्चय ही मोक्ष सुख की प्राप्ति होती है।

धम्मज्झाणब्भासं करेइ तिविहेण जाव-सुद्धेण ।
परमप्प-झाण-चेट्ठो तेणेव खवेइ कम्माणि ॥162॥

अन्वयार्थ- **[जाव]** जो **[तिविहेण सुद्धेण]** मन-वचन-काय की शुद्धि पूर्वक **[धम्मज्झाणब्भासं करेइ]** धर्म्यध्यान का अभ्यास करता है- वह **[परमप्प-झाण-चेट्ठो]** परमात्मा के ध्यान में स्थित होता **[तेणेव]** उसी से **[कम्माणि]** कर्मों का **[खवेइ]** क्षय करता है।

जो मन-वचन-काय की शुद्धि पूर्वक धर्म्यध्यान का अभ्यास करता है- वह परमात्मा के ध्यान में स्थित होता, उसी से कर्मों का क्षय करता है।

अदि-सोहण-जोगेण सुद्धं हेमं हवेइ जह तह य ।
कालाई-लद्धीए अप्पा परमप्पओ हवदि ॥163॥

अन्वयार्थ- **[जह]** जिस प्रकार **[अदि-सोहण-जोगेण]** अति शोधन क्रिया से **[सुद्धं हेमं हवेइ]** स्वर्ण शुद्ध होता है **[तह य]** उसी प्रकार **[कालाई-लद्धीए]** कालादि लब्धि के द्वारा **[अप्पा]** आत्मा **[परमप्पओ]** परमात्मा **[हवदि]** होता है।

जिस प्रकार अति शोधन क्रिया से स्वर्ण शुद्ध होता है उसी प्रकार कालादि लब्धि के द्वारा आत्मा परमात्मा होता है।

कामदुहिं कप्प-तरुं चिंता-रयणं रसायणं परमं ।
लद्धो भुंजइ सोक्खं जहट्ठियं जाण तह सम्मं ॥164॥

अन्वयार्थ- {जह} जैसे {भाग्यवान् पुरुष} **[कामदुहिं]** कामधेनु **[कप्प-तरुं]** कल्पवृक्ष **[चिंता-रयणं]** चिन्तामणि रत्न **[रसायणं]** रसायन **[लद्धो]** प्राप्त करके **[परमं सोक्खं भुंजइ]** संसार के उत्कृष्ट सुखों को भोगता है **[तह]** वैसे ही **[सम्मं]** सम्यग्दृष्टि/सम्यग्दर्शन को प्राप्त करने वाला जीव **[जहट्ठियं]** यथा स्थित क्रमशः उत्तम सुखों को प्राप्त करता है **[जाण]** ऐसा जानो।

जैसे भाग्यवान पुरुष कामधेनु, कल्पवृक्ष, चिन्तामणि रत्न, रसायन प्राप्त करके संसार के उत्कृष्ट सुखों को भोगता है वैसे ही सम्यग्दृष्टि/सम्यग्दर्शन को प्राप्त करने वाला जीव यथा स्थित क्रमशः उत्तम सुखों को प्राप्त करता है ऐसा जानो।

सम्मत्त-णाण-वेरग्ग-तवो-भावं णिरीह-वित्ति-चारित्तं ।
गुण-सील-सहावं तह उप्पज्जइ रयण-सारमिणं ॥165॥

अन्वयार्थ- [इणं रयणसारं] यह रयणसार ग्रंथ **[सम्मत्त-णाण-वेरग्ग-तवो-भावं]** सम्यग्दर्शन, ज्ञान, वैराग्य, तपोभाव **[णिरीह-वित्ति]** निरीहवृत्ति **[चारित्तं]** चारित्र **[तह]** तथा **[गुण-सील-सहावं]** गुण-शील और आत्मस्वभाव को **[उप्पज्जइ]** उत्पन्न करता है।

यह रयणसार ग्रंथ सम्यग्दर्शन, ज्ञान, वैराग्य, तपोभाव, निरीहवृत्ति, चारित्र तथा गुण-शील और आत्मस्वभाव को उत्पन्न करता है।

गंथमिणं जो ण दिट्ठइ ण हु मण्णइ ण हु सुणेइ ण हु पढइ ।
ण हु चिंतइ ण हु भावइ सो चेव हवेइ कुद्दिट्ठी ॥166॥

अन्वयार्थ- [इणं गंथं] इस रयणसार ग्रंथ को **[जो]** जो **[ण दिट्ठइ]** न देखता है **[ण हु मण्णइ]** न तो मानता है **[ण हु सुणेइ]** न सुनता है **[ण हु पढइ]** न पढ़ता है **[ण हु चिंतइ]** न चिंतन करता है **[ण हु भावइ]** न भावना करता है **[सो चेव]** वह मानव/जीव **[कुद्दिट्ठी]** मिथ्यादृष्टि **[हवेइ]** होता है।

इस रयणसार ग्रंथ को जो न देखता है, न तो मानता है, न सुनता है, न पढ़ता है, न चिंतन करता है, न भावना करता है वह मानव/जीव मिथ्यादृष्टि होता है।

इदि सज्जण-पुज्जं रयणसार-गंथं णिरालसो णिच्चं ।
जो पढइ सुणइ भावइ सो पावइ सासयं ठाणं ॥167॥

अन्वयार्थ- [इदि] इस प्रकार **[सज्जण-पुज्जं]** सज्जनों के द्वारा पूज्य **[रयणसार-गंथं]** इस रयणसार ग्रंथ को **[जो]** जो **[णिच्चं]** सदा **[णिरालसो]** आलस्य रहित होकर **[पढइ]** पढ़ता है **[सुणइ]** सुनता है **[भावइ]** भावना करता है **[सो]** वह **[सासयं ठाणं]** शाश्वत स्थान मोक्ष पद को **[पावइ]** पाता है।

इस प्रकार सज्जनों के द्वारा पूज्य इस रयणसार ग्रंथ को जो सदा आलस्य रहित होकर पढ़ता है, सुनता है, भावना करता है वह शाश्वत स्थान मोक्ष पद को पाता है।

इदि रयणसार गंथो समत्तो